International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

# राजस्थान में राज्यपाल–मुख्यमंत्री संबंध और राज्य राजनीति

**डॉ. अशोक मूलवानी**

सहायक आचार्य
राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, निम्बाहेड़ा (राज)

## प्रस्तावना

किसी भी राज्य में राज्यपाल–मुख्यमंत्री संबंध और राज्य राजनीति इस बात पर निर्भर करती है कि उस राज्य में उस समय किस दल या गठबंधन की सरकार बनती है और उसी समय केन्द्र में किस दल और गठबंधन की सरकार है और राज्यपाल के पद पर कौन आसीन है ? अगर संबंधित राज्य में उसी दल या गठबंधन की सरकार है, जिसकी केन्द्र में सरकार है, तो राज्य राजनीति को आज के परिप्रेक्ष्य में केन्द्र या केन्द्रीय नेतृत्व के चारों ओर घूमता हुआ पाते हैं। नेहरू काल में राज्य राजनीति केन्द्रीय नेतृत्व व केन्द्रीय सरकार के चारों ओर ही घूमती हुई दिखाई दी थी, राज्यों के मुख्यमंत्री तक प्रधानमंत्री द्वारा निश्चित किए जाते थे, राज्यीय स्तर पर आंतरिक दलीय मतभेदों तक को केन्द्रीय नेतृत्वकर्त्ता ही सुलझाते थे, आज के संदर्भ में जबकि केन्द्र में श्री नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व में एनडीए की सरकार है, राज्यपालों की नियुक्ति के अतिरिक्त मुख्यमंत्रियों की नियुक्ति तक केन्द्रीय नेतृत्वकर्त्ताओं की इच्छाओं के अनुरूप ही की जा रही है और पार्टी में अपनी स्थिति मजबूत करने वाले नेताओं को उनकी उम्र और पार्टी में उनकी सेवाओ और निष्ठा के आधार पर प्रत्यक्षतः मुख्यमंत्री बनाकर राज्य राजनीति और विकास को उन्हें सौंपने की बजाए उनको केन्द्रीय सरकार में मंत्री पद या राज्यपाल के पद पर नियुक्ति करके राज्य राजनीति और पार्टी के संगठन व अनुशासन को दिल्ली में बैठे–बैठे नियंत्रित करने की कवायद की जा रही है। उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, हरियाणा, असम, गुजरात, उत्तराखण्ड, ओडिशा, त्रिपुरा, गोवा एवं अरूणाचल प्रदेश आदि राज्यों में विधायक दल के नेता के चुनाव में प्रधानमंत्री ने निर्णायक भूमिका निभाई थी। यहां यह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि राज्यों के राज्यपाल केन्द्र की सिफारिश या इच्छानुसार राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं और उनके प्रसादपर्यन्त तक ही वे अपने पद पर बने रहते हैं। इसके अलावा राज्यपाल ज्यादातर ऐसे व्यक्तियों को बनाया गया जो किसी दल विशेष के खास व्यक्ति रहे हों, जिनकों की पुरस्कार स्वरूप इस पद को उन्हें भेंट किया गया हो, जबकि हमारे संविधान में राज्यपाल की संवैधानिक भूमिका के बारे में बताया गया है, केन्द्र सरकार के एजेण्ट के रूप में राज्यपाल को नहीं रखा गया है। स्वाभाविक सी बात है, जब राज्यपाल कोई ऐसा व्यक्ति हो जो किसी दल विशेष से संबंधित हो तो वह उसी दल और विचारधारा का ही समर्थन करेगा, निष्पक्ष होकर कार्य नहीं कर सकेगा। दुविधा और विवाद की स्थिति तब आती है जब केन्द्र व राज्य में अलग–अलग दल या गठबंधन की सरकार हो और राज्यपाल व मुख्यमंत्री की विचारधाराएं और पृष्ठभूमि अलग–अलग हों।

## संसदीय शासन प्रणाली में राज्यपाल का पद, शक्ति एवं स्थिति –

भारत में संसदीय शासन प्रणाली[1] है, इसमें कार्यपालिका नाममात्र और वास्तविक दो प्रकार की हैं, केन्द्र में राष्ट्रपति नाममात्र का कार्यपालक है तो राज्यों में राज्यपाल, दोनों में अंतर सिर्फ यह है कि राष्ट्रपति की नियुक्ति एक निर्वाचक मण्डल द्वारा तो राज्यपाल की नियुक्ति केन्द्र की पसंदीदानुसार राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। राजस्थान में राज्यपाल पद का सृजन 1 नवंबर 1956 को राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों और 7वें संविधान संशोधन के अंतर्गत किया था।[2] इससे पूर्व इस पद का नाम राजप्रमुख था, जिस पर जयपुर के महाराजा सवाई मानसिंह द्वितीय

कार्यरत थे। 30 मार्च, 1949 को जब वृहद् राजस्थान का निर्माण या गठन हुआ, उस समय राजप्रमुख के पद का सृजन हुआ था।[3]

राज्यपाल राज्य के संवैधानिक प्रमुख और मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं। राज्यपाल ही वह व्यक्ति है, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 164 (1) के तहत संसदीय प्रणालीनुसार बहुमत दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करते है, मुख्यमंत्री और उनकी सलाह पर मंत्रिपरिषद् के मंत्रियों की नियुक्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य के प्रमुख अधिकारियों क्रमशः महाधिवक्ता (अनु. 165) और राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों 316 (1) की भी नियुक्ति करते हैं। विधायी शक्तियों के तहत वे राज्य विधानसभा द्वारा पारित विधेयकों पर हस्ताक्षर करने, उन्हें पुनर्विचार के लिए लौटाने और राष्ट्रपति के लिए आरक्षित करने का कार्य भी करते हैं। (अनु. 200) राज्यपाल महोदय भारतीय संविधान के अनुच्छेद 174 के अनुसार मुख्यमंत्री व मंत्रिपरिषद् के परामर्शानुसार विधानसभा सत्र बुलाने, सत्रावसान करने और विधानसभा को भंग करने की शक्ति अनु. 174(2)(b) में रखते हैं, इसके अतिरिक्त यदि राज्य विधानमण्डल का सत्र् नहीं चल रहा हो और किसी महत्वपूर्ण विषय पर कानून बनाने की आवश्यकता हो तो वे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 213 के तहत अध्यादेश भी जारी कर सकते हैं। राज्यपाल राज्य के वार्षिक बजट (अनु. 202) एवं धनविधेयक के संबंध में (अनु. 207) वित्तीय शक्तियां रखते हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 161 के अनुसार न्यायिक रूप से राज्यपाल को राज्य स्तर पर कुछ अपराधों की सजा कम करने, क्षमादान करने की शक्ति प्राप्त है, लेकिन उनकी यह शक्ति वास्तव में राज्य सरकार द्वारा प्रयोग की जाती है, न कि राज्यपाल द्वारा। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 163–164 राज्यपाल को परिस्थितिजन्य विवेकाधिकार की शक्तियां देता है, जिसके तहत वह त्रिशंकु विधानसभा जैसी स्थितियां बनने की स्थिति में वह बड़े दल या गठबंधन को अपने विवेक से सरकार बनाने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं। अनुच्छेद 356 के तहत संवैधानिक संकट की स्थिति में केन्द्र सरकार को संबंधित राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाने की सिफारिश भी कर सकते हैं। राज्य के विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति के रूप में कार्य करने के अतिरिक्त वे संबंधित राज्य के विधानमंडल द्वारा पारित विशेष विश्वविद्यालय अधिनियम के तहत विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की नियुक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 176 के अनुसार राज्य विधानसभा का सत्र् आरंभ होने की स्थिति में वे अभिभाषण का वाचन करते हैं।[4]

## मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया एवं राज्यपाल श्री गुरूमुख निहाल सिंह के पारस्परिक संबंध और राज्य राजनीति का केन्द्रीय नेतृत्वकर्त्ताओं के चारों ओर घूमना

राजस्थान राज्य के गठन के उपरांत सरदार गुरूमुख निहाल सिंह 01 नवंबर, 1956 को राज्य के पहले राज्यपाल बने, उन्होंने इस पद पर 15 अप्रेल, 1962 तक कार्य किया।[5] लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि नाममात्र की और वास्तविक कार्यपालिका के मध्य संबंध विरोधात्मक न होकर सहयोगात्मक हों, इस दृष्टि से गुरूमुख निहाल सिंह और मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया के बीच सौहार्दपूर्ण और सहयोगात्मक संबंध थे, जिससे राजस्थान राज्य की राजनीतिक व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रही। दोनों नेताओं के मध्य प्रशासनिक तालमेल विद्यमान था, जिससे राज्य के लोकतांत्रिक संस्थानों और सरकार द्वारा पारित नीतियों को सफलतापूर्ण लागू किया जा सका। मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया जहां ऊर्जावान मुख्यमंत्री रहे, तो दूसरी ओर राज्यपाल श्री गुरूमुख निहाल सिंह शिक्षाविद् और अनुभवी राजनीतिज्ञ थे। राज्यपाल को राजस्थान की आम जनता की तरह ही सुखाड़िया जी के नेतृत्व में विश्वास था, उन्हें पूरा विश्वास था कि मुख्यमंत्री संविधानिक संस्थाओं का सम्मान करेगें और भारतीय संविधान के अनुरूप शासन चलाएंगें और राजस्थान के सभी वर्गों के कल्याण पर ध्यान देगें। सरदार गुरूमुख निहाल सिंह का मानना था कि सुखाड़िया जी का मुख्यमंत्री बने रहना राजस्थान राज्य के हित में है। यहां सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उस समय नेहरू के करिश्माई नेतृत्व ने राजस्थान राज्य की राजनीति को केन्द्र के इर्द–गिर्द रखा अर्थात् राज्य राजनीति केन्द्र के चारों ओर घूमती हुई दिखाई दी। नवगठित राजस्थान राज्य की

वित्तीय स्थिति कमजोर थी, अधिकांश विकास योजनाओं, अकाल राहत कार्यों व औद्योगिक परियोजनाओं के लिए राज्य सरकार केन्द्र पर निर्भर थी और इसके साथ केन्द्र द्वारा नियुक्त राज्यपाल के माध्यम से राजस्थान राज्य प्रशासन पर केन्द्रीय हस्तक्षेप बना रहा। किसी भी राज्य में राज्यपाल की अर्द्धवार्षिक रिपोर्ट राज्य राजनीति की दिशा तय करती थी।[6]

राज्यपाल गुरूमुख निहाल सिंह ने राज्य में भूमि सुधार और काश्तकारी कानूनों के सुद्ढ़ीकरण हेतु महत्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने सरकार को इस संदर्भ में महत्वपूर्ण सुझाव दिए, जिनमें खातेदारी अधिकारों का विस्तार, काश्तकारों और किसानों को स्वामित्व मिल सके, किसानों को जागीरदारों और जमींदारों के शोषण से मुक्ति मिले, इसके लिए सरकार को लगान की उचित दरें निर्धारित करनी चाहिए। किसानों की जमीनें जब्त/हड़पी न जाएं। इसके लिए उनको कानूनी सुरक्षा दी जाए ताकि जमीन पर जमीन जोतने वाले का अधिकार स्थापित हो सके। 2 अक्टूबर, 1959 को नागौर में पंचायतीराज लागू[7] होने के समय मुख्यमंत्री श्री सुखाड़िया और राज्यपाल श्री निहाल सिंह के बीच कोई प्रशासनिक राजनीतिक मतभेद नहीं था। उस समय राजस्थान भारत का पहला राज्य था, जिसने बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था को अपनाया, इसे लागू करने के लिए राजस्थान विधानसभा में पंचायत समिति एवं जिला परिषद् अधिनियम पारित किया गया। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि मुख्यमंत्री श्री सुखाड़िया और राज्यपाल श्री गुरूमुख निहाल सिंह के बीच जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करने और ग्रामीण भारत को सत्ता सौंपने की इस पहल पर पूर्ण सहमति थी, दोनों शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के पक्षधर रहे। गौरतलब है कि श्री गुरूमुख निहाल सिंह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता थे, वे 13 फरवरी, 1955 से 31 अक्टूबर 1956 तक दिल्ली के मुख्यमंत्री भी रहे। राज्यपाल श्री गुरूमुख निहाल सिंह राजनीतिक जीवन से यह ज्ञात होता है कि वे दिल्ली की राजनीति में सक्रिय कांग्रेसी विचारधारा वाले व्यक्ति थे, इसलिए श्री सुखाड़िया जी के साथ उनके मतभेद नहीं रहे, शिक्षाविद् होने के नाते उन्होंने स्वतंत्र रूप से राज्य के हित में सुखाड़िया जी को अपने विचार भी साझा किए, जिन्हें मुख्यमंत्री श्री सुखाड़िया जी ने अमलीजामा पहनाने के लिए कार्य भी किया।[8] अगस्त 1959 में राजस्थान में स्वतंत्र पार्टी की स्थापना श्री सी. राजगोपालाचारी द्वारा की गई थी, 1962 और 1967 के राजस्थान विधानसभा चुनावों में कांग्रेस के बाद स्वतंत्रत पार्टी सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी बनी थी, इसे 1962 के विधानसभा चुनाव में 36 और 1967 के विधानसभा चुनावों में 48 स्थान प्राप्त हुए, जबकि 1962, 1967 एवं 1971 के लोकसभा चुनावों में पार्टी को क्रमशः 18, 44 एवं 8 सीटें प्राप्त हुई थी। पार्टी का नेतृत्व सी. राजगोपालाचारी के अलावा, के. एम. मुंशी, एन.जी. रंगा एवं मीनू मसानी जैस पुराने दिग्गज कांग्रेस नेताओं ने किया था। यह पार्टी प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की समाजवादी नीतियों और लाइसेंस राज के विरोध में स्थापित की गई थी, जो मुक्त बाजार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का समर्थन करती थी। 1974 में इस पार्टी का भारतीय लोकदल में विलय हो गया और इसका अस्तित्व समाप्त हो गया। 1967 में चतुर्थ आम चुनाव के समय जो संयुक्त मोर्चा बना, उसमें यह सबसे बड़ा घटक दल थी, जिसे 48 स्थान प्राप्त थे।[9]

## राज्यपाल डॉ. संपूर्णानंद एवं मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया के परस्पर संबंध एवं राज्य राजनीति का केन्द्रीय झुकाव

राजस्थान के दूसरे राज्यपाल के रूप में डॉ. संपूर्णानंद ने 16 अप्रेल, 1962 से अपना कार्यकाल शुरू किया और 15 अप्रेल, 1967 तक अपने पद पर बने रहे।[10] राजस्थान में उन्होंने कैदियों के सुधार के लिए सांगानेर (जयपुर) में ओपन जेल की अनूठी पहल की, जिसके लिए उन्हें आज भी याद किया जाता है। इस जेल की शुरूआत 1963 में की गई, इस जेल को **'संपूर्णानंद खुला बंदी शिविर'** भी कहा जाता है। इस जेल में उस समय कैदियों को ऊंची दीवारों और पहरे के बिना रखा जाता था।[11] राज्यपाल डॉ. संपूर्णानंद के श्री मोहनलाल सुखाड़िया से संबंध सहयोगात्मक एवं सामान्य रहे। कुछ प्रशासनिक और राजनीतिक मामलों को लेकर दोनों के मध्य वैचारिक मतभेद रहे। इन मतभेदों में सत्ता का विकेन्द्रीकरण, प्रशासनिक फैसलों में राजभवन की दखलअंदाजी और समाजवादी

नीतियों की कार्यप्रणाली प्रमुख थे। डॉ. संपूर्णानंद एक विद्वान, कठोर प्रशासक और वरिष्ठ कांग्रेसी नेता थे। वे कई बार मुख्यमंत्री के प्रशासनिक फैसलों और नियमों के संचालन में अपना परामर्श देते थे, जिसे मुख्यमंत्री श्री सुखाड़िया जी पसंद नहीं करते थे, वे इसे अपनी शक्तियों में हस्तक्षेप समझते थे। मुख्यमंत्री श्री सुखाड़िया आधुनिक राजस्थान के निर्माण के लिए विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को अपनाना चाहते थे, जबकि सम्पूर्णानंद की प्रशासनिक शैली अधिक केन्द्रीकृत और सैद्धातिक रही थी। श्री संपूर्णानंद के समय प्रदेश की अंदरूनी राजनीति में गुटबाजी अपने चरम पर पहुंच गई थी, जिसको लेकर भी वैचारिक मतभेद उत्पन्न हुए। राज्यपाल के संवैधानिक अध्यक्ष होने के बावजूद भी श्री संपूर्णानंद की राजनीतिक दखल ने उनके पद की गरिमा का उल्लंघन किया था, जिससे विवाद और मतभेद उत्पन्न होना स्वाभाविक था। डॉ. संपूर्णानंद चाहते थे कि उन्हें राज्य के संबंध में स्वतंत्र निर्णय लेने की स्वतंत्रता हो, मुख्यमंत्री सुखाड़िया संवैधानिक दृष्टि से सोचते हुए मानते थे कि मुख्यमंत्री राज्य का प्रशासनिक मुखिया हैं और राजभवन यानि राज्यपाल को राजनीतिक निर्णयों में दखलअंदाजी नहीं करनी चाहिए।[12]

## त्रिशंकु राजस्थान विधानसभा चुनाव परिणाम, राष्ट्रपति शासन, जौहरी बाजार गोलीकांड एवं दलबदल

13 मार्च, 1967 को जब राजस्थान में पहली बार राष्ट्रपति शासन लगा, तो डॉ. संपूर्णानंद ही राज्यपाल थे। 1967 में राजस्थान विधानसभा चुनाव के उपरांत त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति उत्पन्न हुई, 184 सीटों वाली विधानसभा में कांग्रेस को बहुमत से दूर 89 स्थान प्राप्त हुए, जो बहुमत के आकड़ें 93 से कुछ दूर रहे। राज्यपाल संपूर्णानंद चाहते तो सीधे सबसे बड़े दल के रूप में कांग्रेस के श्री मोहनलाल सुखाड़िया को सरकार बनाने का मौका दे देते, लेकिन उन्होंने तत्काल ऐसा नहीं किया, उनकी देरी से विपक्षी दलों ने एकजुट होकर संयुक्त मोर्चा (स्वतंत्र पार्टी, जनसंघ एवं निर्दलीय) बनाकर राज्यपाल डॉ.संपूर्णानंद को 96 विधायकों के समर्थन का पत्र राज्यपाल के सम्मुख रखा। इधर श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने कांग्रेस की सरकार बचाने के लिए कुछ विपक्षी विधायकों को अपने साथ मिला लिया, अब जब उन्होंने श्री सुखाड़िया को सरकार बनाने के लिए न्यौता दिया या देना चाहा तो विपक्षी दलों ने महारानी गायत्री देवी और अन्य नेताओं के नेतृत्व में जयपुर में इसका विरोध किया, क्योंकि विपक्ष का कहना था, चुनाव के बाद ही सही उन्होंने सरकार के गठन के लिए आवश्यक बहुमत जुटा लिया था। अतः 7 मार्च, 1967 को जयपुर के जौहरी बाजार में विरोध प्रदर्शनों के दौरान जौहरी बाजार से आगे बड़ी चौपड़ पर पुलिस फायरिंग में 9 लोगों की मौत के बाद भारी तनाव और अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई। अराजकता भरे माहौल और बिगड़ती कानून व्यवस्था और सरकार के गठन की अनिश्चितताओं के बीच राज्यपाल ने केन्द्र से राष्ट्रपति शासन लगाए जाने की सिफारिश कर दी और राज्य में केन्द्र ने राष्ट्रपति शासन लगाने की सिफारिश को स्वीकार यह सोच कर लिया कि राज्यपाल डॉ. संपूर्णानंद का कार्यकाल अप्रेल, 1967 में समाप्त हो रहा है। इस बीच कांग्रेस को सरकार बनाने का जुगाड़ करने के लिए समय भी मिल जाएगा और कांग्रेस सरकार बनाने में कामयाब भी हो जाएगी। राष्ट्रपति शासन हेतु केन्द्र की सहमति से सांप भी मर गया और लाठी भी नहीं टूटी। गोली कांड की जांच के लिए सरकार ने जस्टिस बी. पी. बेरी की अध्यक्षता में एक न्यायिक आयोग का गठन किया गया। आयोग ने अपनी जांच रिपोर्ट में पूर्व मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया को क्लीन चिट दी। 44 दिन के राष्ट्रपति शासन के उपरांत जब केन्द्र के सहयोग से मोहनलाल सुखाड़िया ने विपक्षी विधायकों को तोड़कर अपने साथ मिला लिया तो नए राज्यपाल हुकुम सिंह ने उन्हें सरकार गठन के लिए आमंत्रित किया और कांग्रेस की सरकार बन गई। इस दौरान श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने जनसंघ के रामचरण को एवं संयुक्त मोर्चे के 5 अन्य विधायकों को अपने साथ जोड़कर अपने समर्थित विधायकों की संख्या 94 कर दी।[13]

## राज्यपाल सरदार हुकुम सिंह और मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया के परस्पर संबंध और राज्य राजनीति –

26 अप्रेल, 1967 को श्री सुखाड़िया ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। उस समय के **राजनीति के चाणक्य** श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने विपक्ष में फूट डलवाकर अपने विधायकों की संख्या कुछ समय बाद 108 तक कर दी।

राज्यपाल सरदार हुकुम सिंह 1962–1967 तक तीसरी लोकसभा में स्पीकर रहे थे, अप्रेल, 1967 में राजस्थान के राज्यपाल बने और उन्होंने 30 जून 1972 तक राजस्थान के राज्यपाल के रूप कार्य किया। मुख्यमंत्री श्री सुखाड़िया और सरदार हुकुम सिंह के मध्य कोई बड़ा राजनीतिक–प्रशासनिक मतभेद नहीं था, लेकिन इनके मध्य कुछ वैचारिक और प्रशासनिक मतभेद जरूर थे, इन मतभेदों में मंत्रियों के चयन एवं राजनीतिक नियुक्तियों को लेकर कुछ मतभेद नजर आए थे। कई बार मंत्रियों, अधिकारियों की नियुक्तियों के संबंध में प्रशासनिक दृष्टिकोण की दृष्टि से दोनों के मध्य सैद्धांतिक चर्चाओं के मध्य असहमति दिखाई दी थी। चूंकि वे एक पूर्व लाकसभा अध्यक्ष थे, इसलिए वे संसदीय और संवैधानिक परंपराओं के पालन पर जोर देते थे, जो कभी–कभी मुख्यमंत्री के व्यावहारिक और राजनीतिक निर्णयों से भिन्न होते थे। इसी तरह राज्य के विकास कार्यों और प्रशासनिक निर्णयों को लेकर राज्यपाल हुकुम सिंह द्वारा जो सुझाव दिए गए, उन्हें या तो पसंद नहीं किया गया या फिर उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर बताया गया। जब जुलाई 1971 में श्री सुखाड़िया ने स्वेच्छा से अपने पद से यह कहते हुए त्यागपत्र दिया कि उन्होंने सरकारी कर्मचारियों की सेवानिवृत्ति आयु कम की है, इसलिए वे भी पद छोड़ रहे हैं तो सरदार हुकुम सिंह ने श्री सुखाड़िया जी के निर्णय की सराहना की और उन्हें जनसेवा के लिए समर्पित नेता बताया और कहा कि राजस्थान में उनके विकास को जनता याद रखेगी, लेकिन इसके पीछे का सच कुछ ओर ही था, इंदिरा गांधी 1971 के लोकसभा चुनावों के उपरांत सशक्त होकर उभरी थीं, उन्होंने पार्टी में अपनी स्थिति को ओर मजबूत करने के उद्देश्य से पार्टी सिंडीकेट को अर्थात् पुराने दिग्गज कांग्रेसी नेताओं को किनारे कर दिया था, उन्होंने सुखाड़िया को इस्तीफा देने के लिए बाधित किया, क्योंकि वे ऐसे दिग्गज कांग्रेसियों को पार्टी से दरकिनार कर रहीं थी, जो उनके हिसाब से उनके प्रति पूर्ण रूप से वफादार नहीं थे। अंततः श्री सुखाड़िया जी ने 8 जुलाई, 1971 को अपने पद से इस्तीफा दे दिया था।[14]

## राज्यपाल सरदार जोगेन्दर सिंह के मुख्यमंत्री श्री बरकत उल्लाह खां के साथ संबंध एवं राज्य राजनीति का केन्द्र की ओर झुकाव

श्री सुखाड़िया के इस्तीफे के उपरांत श्री बरकतुल्लाल खान ने 9 जुलाई 1971 को राजस्थान के पहले मुस्लिम मुख्यमंत्री[15] के रूप में शपथ ली। दोनों के मध्य संबंध संवैधानिक और प्रशासननिक रहे। बरकतुल्लाह खान अपनी मृत्यु तक इस पद पर बने रहे, उनकी मृत्यु के समय राजस्थान के राज्यपाल हुकुम सिंह नहीं सरदार जोगेन्द्र सिंह थे। राजस्थान के तत्कालीन राज्यपाल सरदार जोगेंद्र सिंह और मुख्यमंत्री बरकतुल्लाह खान के मध्य मुख्य विवाद था कि राज्यपाल प्रशासनिक और राजनीतिक मामलों में दखलअंदाजी करते थे। राज्यपाल अक्सर मुख्ययमंत्री खान के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल के निर्णयों और नीतियों पर सवाल उठाते थे, जो मुख्यमंत्री और उनके मंत्रियों को अपने संवैधानिक अधिकारों का अतिक्रमण लगता था। इसी तरह प्रशासनिक अधिकारियों और प्रशासनिक तंत्र के सीधे नियंत्रण को लेकर भी दोनो पक्षों के मध्य तनाव था।

अगर गौर करें तो मुख्यमंत्री श्री बरकतउल्लाह खां और सरदार जोगेन्द्र सिंह के मध्य ये टकराव मुख्य रूप से राज्य के कार्यकारी प्रमुख यानि राज्यपाल और जनता द्वारा चुनी गई सरकार के वास्तविक प्रमुख यानि मुख्यमंत्री के बीच शक्तियों के संतुलन और राजनीतिक वर्चस्व का परिणाम था। यहां इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि बरकतुल्लाह खान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बेहद प्रभावशाली और प्रमुख नेता थे, उन्हें पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का बेहद करीबी और विश्वासपात्र माना जाता था, ऐसे में उनका जोगेंद्र सिंह के साथ टकराव स्वाभाविक ही था, लेकिन इधर जोगेन्द्र सिंह का राजनीतिक कद भी कम नहीं था, वे भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ही प्रभावशाली नेता थे, राजस्थान के राज्यपाल बनने से पहले वे उत्तरप्रदेश के बहराइच से कांग्रेस के सांसद और केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में महत्वपूर्ण पदों पर रहे थे। एक तरह से दोनो के संदर्भ में यह कह सकते हैं कि एक मयान में दो तलवारें कैसे रहतीं? जबकि एक अधिकारयुक्त और दूसरा वास्तविक अधिकारविहीन था। 11 अक्टूबर, 1973 को राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री बरकतुल्लाह खान का निर्धन हो गया।[16]

## राज्यपाल जोगेन्दर सिंह और मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी के परस्पर संबंध, राष्ट्रपति शासन एवं राज्य राजनीति

श्री बरकत उल्ला खां के मुख्यमंत्री पद पर रहते हुए उनकी मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी ने सर्वसम्मति से श्री हरिदेव जोशी को राजस्थान का नया मुख्यमंत्री बना दिया। तत्कालीन राज्यपाल जोगेन्दर सिंह और मुख्यमंत्री श्री हरिदेव के मध्य संबंध असहज ही थे, क्योंकि दोनो नेताओं के मध्य प्रशासनिक निर्णयों, राजनीतिक नियुक्तियों को लेकर तनाव उत्पन्न हुआ, मुख्यमंत्री हरिदेव जोशी राज्यपाल जोगेन्दर सिंह को सिर्फ संवैधानिक प्रमुख के रूप में ही देखते थे, जबकि जोगेन्दर सिंह स्वतंत्र अधिकार प्राप्त करना चाहते है और अपने राजनीतिक प्रभाव का लाभ लेना चाहते थे, इसलिए दोनों के मध्य अधिकारों के टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई। केन्द्रीय नेतृत्व के प्रतिनिधि के रूप में उस समय कई प्रशासनिक और पुलिस अधिकारियों की नियुक्ति और स्थानान्तरण मे उन्होंने हस्तक्षेप किया, इस हस्तक्षेप को मुख्यमंत्री ने संविधान की भावना का उल्लंघन माना, यह प्रशासनिक मामलों में राज्यपाल का अनावश्यक हस्तक्षेप था। केन्द्रीय हाईकमान के हस्तक्षेप को लेकर भी दोनों के मध्य विवाद रहे। दूसरी तरफ श्री हरिदेव जोशी की कार्यशैली बहुत स्वतंत्र थी और राज्यपाल के माध्यम से केंद्रीय नेतृत्व द्वारा राज्य के मामलों को नियंत्रित करने के प्रयासों के कारण दोनों के संबंध सौहार्द्रपूर्ण नहीं रह पाए थे। इस तरह दोनों के बीच पारस्परिक संबंध कभी अच्छे और सहज नहीं रह पाए और मनमुटाव की स्थिति बनी रही।[17]

इसी परिदृश्य में केन्द्र में 1977 में जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद विपक्ष के भारी विरोध और केन्द्र–राज्य संबंधों का हवाला देते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई की सरकार ने कांग्रेस शासित राज्यों की सरकारों को बर्खास्त कर दिया। 29 अप्रेल, 1977 को राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी की सरकार को हटाकर राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया।[18] जब सरकार बर्खास्त हुई, उस समय वेदपाल त्यागी कार्यवाहक राज्यपाल थे, जो 14 फरवरी, 1977 को जोगेन्दर सिंह के इस्तीफे के बाद 15 फरवरी, 1977 को कार्यवाहक राज्यपाल बने।

## राज्यपाल श्री रघुकुल तिलक एवं मुख्यमंत्री श्री भैरोसिंह शेखावत के परस्पर संबंध, राष्ट्रपति शासन, रघुकुल तिलक की बर्खास्तगी, न्यायलय में चुनौती एवं राज्य राजनीति –

राजस्थान में कार्यवाहक राज्यपाल की जगह अप्रेल, 1977 में श्री रघुकुल तिलक पूर्णकालिक राज्यपाल बने। 1977 में जब श्री रघुकुल तिलक को राजस्थान का राज्यपाल बनाया गया, तब राजस्थान में राष्ट्रपति शासन लागू था, उन्होंने संवैधानिक सिद्धांतों, अपनी प्रशासनिक समझ और निष्पक्षता का पालन करते हुए कार्य किया।[19] 1977 में राज्यपाल ने कार्यभार संभालते हुए राज्य का संचालन निष्पक्षता के साथ किया। उन्हीं के कार्यकाल के दौरान राज्य में श्री भैरोसिंह के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी और उनकी सरकार की बर्खास्तगी भी हुई, लेकिन उन्होंने निष्पक्षता के साथ कार्य किया। 1979 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक फैसले में कहा राज्यपाल केन्द्र के अधीन कोई कर्मचारी नहीं है बल्कि एक संवैधानिक पद है।[20]

राज्यपाल श्री रघुकुल तिलक ने नई विधानसभा के गठन के बाद 19 जुलाई, 1977 को अपने पहले अभिभाषण में सरकार को लोकतांत्रिक मूल्यों तथा जनता के कल्याण के प्रति सही दिशा में कार्य करने का परामर्श दिया। राज्यपाल श्री रघुकुल तिलक और मुख्यमंत्री श्री भैरोंसिंह शेखावत के बीच संबंध वैचारिक और राजनीतिक रूप से तनावपूर्ण रहे। रघुकुल तिलक राजस्थान के एकमात्र ऐसे राज्यपाल थे, जिसके कार्यकाल में राष्ट्रपति शासन लागू भी हुआ और हटाया भी गया। जब वे राज्यपाल बने तब भी राजस्थान में राष्ट्रपति शासन रहा और केन्द्र में श्रीमति इंदिरा गांधी की सरकार के आने के बाद भी फरवरी, 1980 में राज्यपाल श्री रघुकुल तिलक के कार्यकाल के दौरान ही राजस्थान में श्री भैरोसिंह शेखावत की सरकार को बर्खास्त कर दिया गया था। श्री रघुकुल तिलक ने 1977 से 1981 तक राजस्थान के राज्यपाल के रूप में कार्य किया, वे एक स्वतंत्रता सैनानी और शिक्षाविद् थे। बतौर प्रशासक उनका कार्यकाल बेहद चुनौतीपूर्ण और ऐतिहासिक रहा। वे राजस्थान के एकमात्र ऐसे राज्यपाल है, जिनके

कार्यकाल के दौरान राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाया भी गया और हटाया भी गया। फरवरी 1980 में श्री भैरोसिंह शेखावत की सरकार को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था और उन्हीं के कार्यकाल में जून 1980 में इसे वापिस लेकर श्री शिवचरण माथुर के नेतृत्व में नई सरकार का गठन हुआ था। उन्हीं के कार्यकाल में हरगोविंद पंत बनाम रघुकुल तिलक 1979 वाद सुप्रीम कोर्ट में आया, इसमें यह चुनौती दी गई थी कि राजस्थान लोक सेवा आयोग के पूर्व सदस्य को राज्यपाल नहीं बनाया जा सकता, लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि राज्यपाल का पद एक स्वतंत्र संवैधानिक पद है, जिसे सरकार के अधीन रोजगार नहीं माना जा सकता है। अगस्त, 1981 में केन्द्र सरकार ने उन्हें समय से पहले राज्यपाल के पद से हटा दिया था, उन्होंने इस फैसले को राजस्थान उच्च न्यायलय में चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने उनकी याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि इस मामले में राष्ट्रपति की इच्छा न्यायोचित नहीं है, रघुकुल तिलक के अनुसार उनकी बर्खास्तगी अनुच्छेद 156 (1) का राजनीति दुरूपयोग था, जिसमें कहा गया है कि राज्यपाल राष्ट्रपति की इच्छा के अनुसार ही पद पर बने रहेंगें। रघुकुल तिलक को बर्खास्त किए जाने के बाद 9 अगस्त, 1981 को न्यायमूर्ति के. डी. शर्मा कार्यवाहक राज्यपाल बने।[21]

## राज्यपाल ओम प्रकाश मेहरा एवं मुख्यमंत्री श्री शिवचरण माथुर के परस्पर संबंध, राजा मानसिंह हत्याकांड और भ्रष्टाचार के आरोप एवं राज्य राजनीति

एयर चीफ मार्शल ओमप्रकाश मेहरा 6 मार्च, 1982 को राजस्थान के पूर्णकालिक राज्यपाल बने। श्री मेहरा एवं मुख्यमंत्री माथुर के बीच सीधा टकराव नहीं था, राज्यपाल श्री मेहरा ने मुख्यमंत्री श्री माथुर को उनके पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलवाई थी। श्री शिवचरण माथुर का कार्यकाल 1981 से 1985 और 1988 में वे पुनः मुख्यमंत्री बने। दोनों के मध्य संवैधानिक और प्रशासनिक स्तर पर सामान्य संबंध रहे और दोनों के काल में कार्यपालिका के दोनों स्वरूपों में टकराव नहीं रहा, जिससे राजस्थान की राजनीतिक व्यवस्था को किन्हीं चुनौतियों का सामना नहीं करना पड़ा था।

1981 से 1985 के मध्य राजस्थान के मुख्यमंत्री—राज्यपाल के बीच संवैधानिक तनाव का कारण राजभवन और राज्य सरकार के मध्य प्रशासनिक निर्णयों पर मतभेद था। यह तनाव 1985 के बहुचर्चित राजा मानसिंह हत्याकांड और भ्रष्टाचार के आरोपों के कारण चरम पर पहुंच गया था। भ्रष्टाचार के ये आरोप अवैध खनन को लेकर थे। इन प्रशासनकि मामलों की निष्पक्षता और जवाबदेही को लेकर राजभवन और मुख्यमंत्री सचिवालय के बीच तनाव की स्थिति बनी रही।[22]

फरवरी, 1985 में जब राजस्थान में विधानसभा चुनाव प्रचार अपने चरम पर था, उस समय श्री शिवचरण माथुर मुख्यमंत्री थे, जब चुनाव प्रचार के दौरान 20 फरवरी, 1985 को मुख्यमंत्री भरतपुर जिले के डीग कस्बे पहुंचे, वहां निर्दलीय उम्मीदवार व पूर्व विधायक राजा मानसिंह और कांग्रेस समर्थकों के बीच संघर्ष हो गया। राजा मानसिंह के समर्थकों ने कांग्रेस समर्थकों पर उनके झण्डे और पोस्टर फाड़ने का आरोप लगाया, तो कांग्रेस समर्थकों का कहना था कि राजा मानसिंह ने अपनी जोगा जीप से चुनाव सभा के लिए तैयार मंच और श्री माथुर के हेलिकॉप्टर को क्षतिग्रस्त कर दिया। हेलिकॉप्टर के पायलट ने किसी तरह हेलीकॉप्टर से कूदकर जान बचाई, पुलिस ने राजा मानसिंह के खिलाफ हत्या का मामला दर्ज किया, अगले दिन डीग के बाजार में 21 फरवरी, 1985 को पुलिस और राजा मानसिंह के बीच आमना—सामना हुआ, पुलिस फायरिंग में राजा मानसिंह की मृत्यु हो गई, उनके अन्य दो साथी भी मारे गए। उनकी मृत्यु के बाद राजस्थान और उत्तरप्रदेश के जाट बहुल क्षेत्रों में आक्रोश फैल गया। जाट नेता की मृत्यु से कांग्रेस आलाकमान को लगा कि श्री शिवचरण माथुर अगर मुख्यमंत्री बने रहे तो चुनावों में जाटों का समर्थन नहीं मिलेगा और कांग्रेस प्रत्याशियों की हार होगी, इसलिए आलाकमान ने मुख्यमंत्री को इस्तीफा देने के लिए कहा, प्रधानमंत्री श्रह राजीव गांधी के निजी सचिव के फोन के बाद शिवचरण माथुर ने 22 फरवरी 1985 की आधी रात को मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। भरतपुर व मथुरा जिले के जाट समुदाय के डर और आक्रोश ने

मुख्यमंत्री को इस्तीफा देने पर मजबूर कर दिया।[23] उनके इस्तीफे के बाद श्रह हीरालाल देवपुरा अंतरिम मुख्यमंत्री बने।

## राज्यपाल श्री ओमप्रकाश मेहरा एवं श्री बसंतदादा पाटिल के मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी के साथ संबंध, संवैधानिक संकट, दिवराला (सीकर) सती की घटना और राज्य राजनीति –

राजस्थान विधानसभा चुनाव 1985 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को 200 सीटों में से 113 सीटें प्राप्त हुई, जाटों का विरोध कांग्रेस को सत्ता में आने से रोक नहीं पाया, हरिदेव जोशी पुनः मुख्यमंत्री बने। मार्च 1985 में जब हरिदेव जोशी राजस्थान के मुख्यमंत्री बने, तो उनके और तत्कालीन राज्यपाल के बीच एक दिलचस्प संवैधानिक संकट उत्पन्न हो गया, राज्यपाल श्री ओमप्रकाश मेहरा ने उन्हें शपथ दिलाने से मना कर दिया, इसके पीछे एक जायज कारण था कि एक ही व्यक्ति एक बार में दो अलग–अलग संवैधानिक पदों पर कैसे आसीन हो सकता था ?

श्री हरिदेव जोशी मुख्यमंत्री पद की शपथ लेने से पहले असम के राज्यपाल के पद पर कार्य कर रहे थे, उनके मुख्यमंत्री बनने की घोषणा के तत्काल बाद उन्होंने राज्यपाल पद से इस्तीफा राष्ट्रपति को भेज दिया था, लेकिन जब उनके शपथ कार्यक्रम की घोषणा हुई, तब तक उनका इस्तीफा राष्ट्रपति महोदय ने स्वीकार नहीं किया था, इसलिए तत्कालीन राज्यपाल ने उन्हें शपथ दिलवाने से इंकार कर दिया। इस तत्कालीन घटनाचक्र में जब जोशी अपना इस्तीफा सौंपकर विधायक दल के नेता चुने गए और राजभवन में शपथ लेने पहुंचे तो निर्धारित समय पर राज्यपाल शपथ दिलवाने नहीं पहुंचे। असम के राज्यपाल के पद से उनका इस्तीफा राष्ट्रपति ने स्वीकार नहीं किया और न ही असम का कोई नया राज्यपाल नियुक्त हुआ था, ऐसे में राजभवन के मुख्य सचिव को शपथ ग्रहण कार्यक्रम स्थगित करने की घोषणा करनी पड़ी। कार्यक्रम स्थगन की सूचना प्रसारित होने के बाद ही राष्ट्रपति ने उनका इस्तीफा स्वीकार कर लिया और शपथ ग्रहण के नए कार्यक्रमानुसार अगले दिन उनको मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलवाई गई। यहां राजस्थान की राजनीति में कुछ सवाल खड़े हुए कि कैसे श्री हरिदेव जोशी ने राज्यपाल के संवैधानिक पद पर रहते हुए विधायक दल की बैठक में हिस्सा लिया ? कैसे उन्हें विधायक दल का नेता चुन लिया ? और कैसे उन्हें शपथ लेने के लिए आमंत्रण भी दे दिया गया ? शुक्र रहा कि मामला सुप्रीम कोर्ट नहीं पहुंचा, बाद में राष्ट्रपति ने जोशी का असम के राज्यपालन पद से इस्तीफा स्वीकार कर संवैधानिक संकट को टाल दिया।[24]

10 मार्च, 1985 को मुख्यमंत्री बनाए जाने के उपरांत हरिदेव जोशी 20 जनवरी, 1988 तक राजस्थान के मुख्यमंत्री रहे, उन्हें अपना कार्यकाल अधूरा छोड़कर त्यागपत्र देना पड़ा, इसके पीछे कुछ महत्वपूर्ण कारण रहे। 1987 में रूप कंवर सतीकांड (दिवराला गांव, 4 सितंबर, 1987 सीकर, पति के निधन के बाद उनकी चिता पर जलकर 18 वर्षीय रूप कंवर की मौत हो गई थी, दिसंबर 1829 में ब्रिटिश सरकार द्वारा इस प्रथा को प्रतिबंधित किए जाने के करीब 158 साल बाद पूरी दुनिया का ध्यान सती होने की घटना ने खींचा, इस घटना में करीब 32 लोगों की गिरफ्तारी हुई थी) की घटना ने देश को झकझोर दिया, विपक्ष ने इस मामले को लेकर सरकार पर दबाव डाला और कानून व्यवस्था को लेकर राज्य में भारी विरोध हुआ, जिससे सरकार दबाव में आई और श्री हरिदेव जोशी को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा और पुनः श्री शिवचरण माथुर को राजस्थान का मुख्यमंत्री बनाया गया।[25] राजस्थान की राजनीति का इतिहास संघर्षशील रहा है, यहां के नेताओं और शूरवीरों का नाता संघर्ष से जरूर रहा है। श्री हरिदेव जोशी लगातार 10 बार विधानसभा चुनाव जीतने वाले प्रदेश के एकमात्र विधायक रहे, लेकिन 3 बार मुख्यमंत्री रहने के बाद भी एक बार भी मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने अपना कार्यकाल पूर्ण नहीं कर पाए। रूपकंवर कांड के अलावा प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी मुख्यमंत्री हरिदेव जोशी के कामकाज से असंतुष्ट थे, 1986–87 में जब राजस्थान में भीषण सूखा–आकाल पड़ा तो राज्य सरकार के प्राकृतिक आपदा से निपटने के तौर–तरीकों से प्रधानमंत्री संतुष्ट नहीं रह पाए। मार्च 1985 में जब श्री हरिदेव जोशी मुख्यमंत्री बने तो श्री अशोक गहलोत और जोशी के बीच

राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और खींचतान हुई, जिसकी शिकायत हाईकमान के पास पहुंची। प्रदेश में मार्च 1985 में कांग्रेस सरकार में श्री हरिदेव जोशी को मुख्यमंत्री बनाया गया और इसी दौरान सितंबर 1985 में अशोक गहलोत कांग्रेस के प्रदेशाध्यक्ष रहे। प्रादेशिक सत्ता और कांग्रेस संगठन में लॉबिंग शुरू हुई। स्थानीय नेताओं ने केन्द्रीय आलाकमान को रूप कंवर सती कांड से अवगत करवाया और सरकार की नाकामियों को उजागर किया, जिसके कारण प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने हरिदेव जोशी को मुख्यमंत्री पद से हटाकर (20 जनवरी, 1988 को नेतृत्व परिवर्तन) शिवचरण माथुर को मुख्यमंत्री बना दिया, कुछ समय श्री अशोक गहलोत राज्य के गृहमंत्री रहे।[26] इस तरह हम देखते हैं कि राजस्थान की राज्य राजनीति केन्द्रीय राजनीति के इर्द–गिर्द घूमती हुई दिखाई देती है, जिसमें हम यह पाते हैं कि पार्टी की अंदरूनी खींचतान और सभी विवादों पर केन्द्रीय नेतृत्वकर्ताओं द्वारा निर्णय लिये जाते रहे थे, इसलिए राज्य राजनीति केन्द्र के चारों ओर घूमती हुई दिखाई देती है।

20 नवंबर, 1985 को बसंतदादा पाटिल राजस्थान के राज्यपाल बने और 14 अक्टूबर, 1987 तक इस पद पर कार्य करते रहे। श्री हरिदेव जोशी का विवाद तत्कालीन कांग्रेस प्रदेशाध्यक्ष श्री अशोक गहलोत के साथ सत्ता संघर्ष को लेकर हुआ। बसंतदादा पाटिल महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री रहे थे और दोनों ही कांग्रेस के दिग्गज नेता रहे थे, दोनों के मध्य बेहतर प्रशासनिक तालमेल रहा। श्री हरिदेव जोशी तीसरी बार 04 दिसंबर, 1989 को राजस्थान के मुख्यमंत्री बने, लेकिन वे इस बार भी तकनीकी कारणों से अपना कार्यकाल पूर्ण नहीं कर सके, वे 04 मार्च, 1990 तक ही इस पद पर कार्य करते रहे। इस काल में राजस्थान की राजनीति में उथल–पुथल का मुख्य कारण कांग्रेस की अंदरूनी कलह ही थी, लेकिन इस अंदरूनी कलह को काफी हद तक केन्द्रीय नेतृत्वकत्ताओं ने सुलझाने का प्रयत्न किया था।[29]

## राज्यपाल श्री देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय एवं मुख्यमंत्री श्री भैरोसिंह शेखावत के परस्पर संबंध एवं पंथनिरपेक्षता की राजनीति

1990 के राजस्थान विधानसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े दल के रूप में उभरी और श्री भैरोसिंह शेखावत मुख्यमंत्री बने, इधर 14 फरवरी, 1990 को श्री देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय राजस्थान के राज्यपाल बने। 4 मार्च, 1990 को बीजेपी के श्री भैरोसिंह शेखावत ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। वर्ष 1990 में राजस्थान में भैरोसिंह शेखावत की जो सरकार बनी, वह जनता दल के गठबंधन से बनी थी, विधानसभा चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला था, लेकिन शेखावत जी के राजनीतिक कौशल और अन्य छोटे दलों व निर्दलीयों के समर्थन से उनकी सरकार बन गई, यह गठबंधन चुनावपूर्व गठबंधन था। राज्यपाल श्री देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय जो एक प्रसिद्ध शिक्षाविद और राजनीतिक हस्ती थे के साथ शेखावत का ऐसा कोई सार्वजनिक विवाद नहीं था, उन्होंने राजस्थान के राज्यपाल के रूप में 14 फरवरी, 1990 से 25 अगस्त 1991 तक कार्य किया। श्री देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय के उपरांत गुजरात के राज्यपाल डॉ. स्वरूप सिंह को राजस्थान के राज्यपाल का अतिरिक्त कार्यभार दिया गया और वे 26 अगस्त, 1991 से 4 फरवरी, 1993 तक राजस्थान के कार्यवाहक राज्यपाल रहे।

1989 में केन्द्र में जनता दल के नेतृत्व वाले नेशनल फ्रंट ने सरकार बनाई थी, जिसका नेतृत्व श्री वी. पी. सिंह ने किया था, इस सरकार को भारतीय जनता पार्टी और वाम दलों ने बाहर से समर्थन दिया, ये बाहरी समर्थन कांग्रेस को सत्ता से बाहर रखने के लिए दिया गया था। अक्टूबर, 1990 में लालकृष्ण आडवाणी की राम रथ यात्रा को बिहार में रोके जाने और उनकी गिरफ्तारी के उपरांत भाजपा ने केन्द्र की जनतादल सरकार से अपना समर्थन वापिस ले किया, जिससे नवंबर, 1990 में लोकसभा में विश्वास का मत खोने के उपरांत वी. पी. सिंह की सरकार गिर गई। इधर राज्य में जनता दल ने राजस्थान की भाजपा सरकार से समर्थन वापिस ले लिया और राजस्थान की भाजपा सरकार संकट में आ गई, लेकिन श्री शेखावत अपनी सरकार बचाने में कामयाब हो गए, जनता दल में विभाजन हुआ और कुछ जनता दल के विधायकों ने शेखावत को समर्थन दिया, जिससे भैरोसिंह शेखावत सरकार

संकट से उबर गई और सरकार गिरने से बच गई, राज्यपाल ने जनता दल की टूट और भैरोसिंह शेखावत की राजनीतिक परिपक्वता को भांपते हुए उन्हें बहुमत साबित करने के लिए नहीं बुलाया और उनका निर्णय सही भी साबित हुआ, क्योंकि जनता दल में टूट के बाद एक धड़े और निर्दलीयों ने शेखावत सरकार को समर्थन देना जारी रखा और सरकार गिरने से बच गई।[30]

## अयोध्या में बाबरी मस्जिद ढ़ाचा गिराए जाने की घटना और राजस्थान में राज्यपाल एम.चेन्ना रेड्डी द्वारा राष्ट्रपति शासन लगाए जाने की केन्द्र से सिफारिश और राष्ट्रपति शासन लगाया जाना, पंथनिरपेक्षता संविधान का मूलभूत ढांचे की अवधारणा का जन्म

15 दिसंबर, 1992 को राजस्थान में अयोध्या में बाबरी मस्जिद विध्वंस की पृष्ठभूमि में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था।[31] उस समय राज्य के राज्यपाल डॉ. एम. चेन्ना रेड्डी[32] थे, केन्द्र ने राज्य सरकार पर प्रतिबंधित संगठनों की गतिविधियों को रोकने में विफल रहने का आरोप लगाकर राष्ट्रपति शासन राजस्थान पर थोप दिया। 6 दिसंबर, 1992 को अयोध्या में विवादित ढांचा गिराए जाने के बाद देशभर में सांप्रदायिक तनाव की स्थितियां उत्पन्न हो गई थीं। केन्द्र की पी.वी. नरसिम्हा राव की सरकार ने आरएसएस, विश्व हिंदू परिषद् सहित 5 अन्य संगठनों पर प्रतिबंध लगाया था। केन्द्र ने यह माना कि अयोध्या में विवादित ढाचे को गिराने में इन्हीं प्रतिबंधित संगठनों का हाथ था और ये संगठन और इनके कार्यकर्त्ता बीजेपी शासित राज्यों में शरण ले सकते थे और इन राज्यों में इसी तरह की सांप्रदायिक घटनाओं को अंजाम देकर साम्प्रदायिक तनाव जैसी स्थितियां उत्पन्न कर सकते थे, इसलिए इन संगठनों को केन्द्र द्वारा प्रतिबंधित किए जाने के साथ जिन राज्यों में इन संगठनों को प्रश्रय मिल सकता था, वहां राज्य सरकारों को बर्खास्त कर राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया।

राज्यपाल एम. चेन्ना रेड्डी ने अपनी रिपोर्ट में संवैधानिक तंत्र के विफल होने की रिपोर्ट केन्द्र को भेजी और राज्य सरकार को बर्खास्त कर विधानसभा को भंग कर दिया गया, यह राजस्थान में राष्ट्रपति शासन का चौथा और सबसे लम्बा 354 दिनों का दौर था। बीजेपी शासित राज्यों की सरकारों ने केन्द्र के लोकतांत्रिक सरकारों के बर्खास्त किए जाने को उच्च न्यायालय में चुनौती दी। ऐतिहासिक एस. आर. बोम्मई बनाम भरत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि पंथनिरपेक्षता भारतीय संविधान के मूलभूत ढ़ाचे के अंतर्गत आता है, अगर कोई राज्य सरकार पंथनिरपेक्षता के सिद्धांतों के विरूद्ध काम करती है तो राष्ट्रपति लगाया जा सकता है और राज्य सरकार को बर्खास्त किया जाना उचित है। इसी मामले में सुप्रीम कोर्ट ने यह ऐतिहासिक व्यवस्था भी दी कि राष्ट्रपति शासन की घोषणा न्यायिक समीक्षा के अधीन है, इसे न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। यदि केन्द्र सरकार दुर्भावनापूर्ण तरीके से इसका प्रयोग विरोधी दलों की सरकारों को गिराने के लिए करती है, तो न्यायपालिका उसके निर्णय को समाप्त कर सकती है। उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान में उच्च न्यायालय ने इसे वैध ठहराया, किंतु मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने इसे दुर्भावनापूर्ण बताकर केन्द्र के इस फैसले को निरस्त कर बर्खास्त सरकार को पुनः बहाल कर दिया, लेकिन केन्द्र ने भोपाल उच्च न्यायालय के इस फैसले को सुप्रीम में चनौती दी, उसने भोपाल उच्च न्यायालय के फैसले को बदलते हुए पंथनिरपेक्षता के आधार पर राज्य सरकार की बर्खास्तगी को उचित ठहराया। माननीय न्यायपालिका ने एस. आर. बोम्मई बनाम भारतीय संघ के ऐतिहासिक फैसले में 1994 में राष्ट्रपति शासन को लगाया जाना उचित ठहराया। सुप्रीम कोर्ट का तर्क था कि चूंकि संबंधित राज्य सरकारें पंथनिरपेक्षता के मूलभूत ढांचे का पालन करने में विफल रही थीं और उनके कार्यों से सांप्रदायिक सौहार्द बिगड़ रहा था, इसलिए अनुच्छेद 356 का प्रयोग उचित था।[33]

## राज्यपाल बलिराम भगत की केन्द्र के एजेण्ट की भूमिका के तहत भारतीय जनता पार्टी को सत्ता से दूर रखने की कोशिश और राज्य राजनीति

नवंबर 1993 में राजस्थान विधानसभा चुनाव परिणाम के समय श्री बलिराम भगत राजस्थान के राज्यपाल थे, चुनाव परिणाम त्रिशंकु विधानसभा के रहे, भाजपा को 95 सीटें मिली, वह जादुई आकड़े 101 से दूर रही। तत्कालीन राज्यपाल ने केन्द्र के इशारे पर श्री भैरोसिंह शेखावत को सत्ता से दूर रखना चाहा। सरकार बनाने के दावे को लेकर राज्यपाल और भावी मुख्यमंत्री श्री भैरोसिंह शेखावत के बीच सीधा टकराव उत्पन्न हुआ। श्री भैरोसिंह शेखावत के खेमे में राज्यपाल के विरूद्ध नाराजगी थी कि राज्यपाल जानबूझकर कांग्रेस को लाभ पहुंचाने के लिए भाजपा को सरकार बनाने का न्यौता नहीं दे रहे हैं एवं अनावश्यक विलम्ब कर रहे हैं ताकि कांग्रेस को जोड़–तोड़ करने का अवसर प्राप्त हो जाए और वे 101 का जादुई आकड़ा प्राप्त करके सरकार बनाने का दावा कर सकें। राज्यपाल की आनाकानी एवं अनावश्यक विलम्ब के पश्चात् विरोध करने हेतु श्री भैरोसिंह शेखावत बिना पूर्व अनुमति के सीधे राजभवन गए और वहां विधायकों की परेड कराई और दबाव की राजनीति से सरकार बनाने का दावा रखा। भाजपा के कड़े रूख एवं भारी राजनीतिक दबाव के चलते राज्यपाल को झुकना पड़ा और उन्होंने अंततः उन्हें सरकार बनाने का मौका दिया और श्री शेखावत ने निर्दलीय विधायकों व अन्य के समर्थन से सरकार बनाकर विधानसभा में अपना बहुमत सिद्ध किया।[34]

## राज्यपाल श्री बलिराम भगत व श्री भैरोसिंह शेखावत के परस्पर संबंध और राज्य राजनीति

श्री बलिराम भगत कांग्रेस के बड़े कद्दावर नेता थे, जो लोकसभा अध्यक्ष एवं विदेश मंत्री जैसे महत्वपूर्ण पदों पर रहे और उन्होंने राजस्थान के राज्यपाल का पद भी संभाला था। मुख्यमंत्री श्री भैरोसिंह शेखावत और राज्यपाल बलिराम भगत के बीच राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता थी, इनके परस्पर संबंधों की शुरूआत तनावपूर्ण वातावरण से हुई और दूसरी बात यह थी कि केन्द्र में नरसिम्हा राव की सरकार थी। विपरीत व विरोधी विचारधारा के कारण केन्द्र–राज्य के बीच तनावपूर्ण संबंध स्वाभाविक ही थे, बलिराम भगत केन्द्र की कांग्रेस सरकार द्वारा नियुक्त राज्यपाल थे और वे संवैधानिक अध्यक्ष की भूमिका और केन्द्र के एजेण्ट की भूमिका निभाते दिखाई दिए। 1994–1998 के मध्य उनके संबंधों के मध्य तल्खी बनी रही। दोनों के मध्य प्रशासनिक नीतियों को लेकर अक्सर वैचारिक और राजनीतिक मतभेद दिखाई दिए। शेखावत सरकार द्वारा पारित पंचायती राज विधेयक को उन्होंने कुछ समय के लिए अपने पास रोका था, 1994 में राजस्थान में विकेन्द्रीकरण और पंचायतीराज संस्थाओं को मजबूत करने के लिए यह विधेयक लाया गया था। राज्यपाल महोदय के अनुसार यह विधेयक भारत के संविधान के 73वें संविधान संशोधन विधेयक और पंचायती राज के संवैधानिक प्रावधानों के साथ पूर्ण रूप से संरेखित नहीं था। वे चाहते थे कि पंचायतीराज का नया अधियनियम पूरी तरह से संवैधानिक आवश्यकताओं के अनुरूप हो और कानून में कोई असंवैधानिक कमी न रहे। उनकी यह आपत्ति वैधानिक थी, राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित नहीं थी।[35]

## राज्यपाल श्री अंशुमान सिंह एवं मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत के परस्पर संबंध एवं राज्य राजनीति

दिसंबर, 1998 में जब श्री अशोक गहलोत पहली बार राजस्थान के मुख्यमंत्री बने,[36] तो कांग्रेस के वरिष्ठ नेता परसराम मदेरणा के नेतृत्व और विधायकों के भारी समर्थन के बावजूद पार्टी आलाकमान ने गहलोत को मुख्यमंत्री बना दिया, जबकि श्री गहलोत विधायक भी नहीं थे, हां वे गांधी परिवार के बेहद करीबी रहे थे, प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गांधी एवं श्री राजीव गांधी के मंत्रिमण्डलों में वे उप–खेल मंत्री एवं पर्यटन व नागरिक उड्यन राज्य मंत्री रहे थे। इस समय राजस्थान के कार्यवाहक राज्यपाल एन. एल. टिब्बरेवाल थे, उन्होंने 15 जनवरी, 1999 तक राज्यपाल का कार्यभार संभाला और उनके बाद श्री अंशुमान सिंह ने 16 जनवरी, 1999 से 13 मई 2003 तक पदभार संभाला। गहलोत जी के आरंभिक कार्यकाल में विभिन्न राज्यपालों के साथ संबंध मुख्य रूप से संवैधानिक दायरे में सामान्य और औपचारिक रहे थे। दिसंबर 1998 में सत्ता संभालने के बाद उन्हें राजस्थान में सूखा और अकाल प्रबंधन की चुनौती का सामना करना पड़ा था। ऐसे विकट समय में तत्कालीन राज्यपालों ने आपदा प्रबंधन और प्रशासनिक

फैसलों में सरकार के साथ सामंजस्य बिठाकर कार्य किया। इस समय गहलोत सरकार और राजभवन के बीच किसी बड़े टकराव या विवाद की स्थिति को नहीं देखा गया।

1998 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को 200 में से 153 सीटें मिली थीं।[37] जाट समुदाय श्री परसराम मदेरणा जी को मुख्यमंत्री बनाए जाने की उम्मीद लगाए था, लेकिन मदेरणा जी को दरकिनार कर श्री अशोक गहलोत को मुख्यमंत्री बनाया गया, लेकिन राजस्थान की राजनीति और जनता के लिए अच्छी बात यह रही श्री मदेरणा ने कांग्रेस के दिल्ली हाईकमान का कोई विरोध नहीं किया, बल्कि उनके निर्णय के अनुसार पार्टी का हित सर्वोपरि को स्वीकार किया और गहलोत जी के साथ संभावित टकराव को टाल दिया। दिग्गज परसराम मदेरणा जी ने हाईकमान के निर्णय का सम्मान किया, लेकिन दिग्गज जाट नेतृत्वकर्त्ताओं ने अशोक गहलोत जी के प्रति नाराजगी जाहिर करते हुए मुख्यमंत्री बदलने की मांग की, जाट समुदाय के व्यापक दबाव और गहलोत को हाईकमान द्वारा हटाए जाने की अटकलों के बीच गहलोत साहब ने केन्द्रीय नेतृत्वकर्त्ताओं की इच्छानुसार व अपने राजनीतिक चातुर्य का परिचय देते हुए कमला बेनीवाल और बनवारी लाल बैरवा को उप–मुख्यमंत्री बना दिया था।[38] राजस्थान का यह दुर्भाग्य रहा जब राजस्थान में सत्ता का परिवर्तन होकर राजस्थान में कांग्रेस के 2/3 बहुमत वाली कांग्रेस की सरकार बनी तब केन्द्र में एनडीए की सरकार बनी, जिसका नेतृत्व कांग्रेस की परम्परागत प्रतिद्वद्वी भारतीय जनता पार्टी ने किया था। राजस्थान को केन्द्र की आर्थिक सहायता में कमी आई, क्योंकि केन्द्र में बीजेपी की सरकार रही। श्री अशोक गहलोत के कार्यकाल में जब राजस्थान में ऐतिहासिक सूखा पड़ा तब गहलोत ने केंद्र से भारी वित्तीय सहायता और खाद्यान्न की मांग की। इसे लेकर दोनों सरकारों के बीच अनुदान की राशि और पैकेज की समयबद्धता को लेकर राजनीतिक खींचतान हुई और इस टकराव में आपदाग्रस्त राजस्थान की जनता पीड़ित हुई। अकाल–सूखे की स्थिति ने महंगाई को बढ़ा दिया, आलू–प्याज की कीमतें आसमान छूने लगीं, सितंबर, 1999 के संभावित लोकसभा चुनाव से ठीक पहले केंद्र द्वारा राजस्थान में जाटों को केन्द्र की ओबीसी सूची में शामिल करने की घोषणा कर दी गई।[39] गहलोत सरकार ने इस घोषणा का तकनीकी विरोध करते हुए कहा कि केन्द्र को जल्दबाजी करने के बजाए सबसे पहले राज्य पिछड़ा वर्ग आयोग से विस्तृत अध्ययन व अनुशंसा करवानी चाहिए। केन्द्र के फैसले के ठीक बाद तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री गहलोत सरकार ने भी 3 नवंबर, 1999 को जाटों को ओबीसी में शामिल कर लिया, जाटों को आरक्षण देने के निर्णय पर श्रेय लेने की राजनीति होने लगी[40] जनवरी, 2000 में भरतपुर व धौलपुर के जाटों को भी ओबीसी में शामिल किया गया।[41] जाटों को ओबीसी का दर्जा मिलने से अन्य पिछड़ी जातियों में असंतोष फैल गया, गुर्जर समुदाय का तर्क था जाटों को आरक्षण मिलने से उनको मिलने वाले आरक्षण का हिस्सा कम हो जाएगा। आरक्षण के इस फैसले को हाईकोर्ट में चुनौती दी गई, 10 अगस्त 2015 को राजस्थान हाईकोर्ट ने भरतपुर और धौलपुर जिलों के जाटों को मिला ओबीसी का कोटा रद्द कर दिया, जिसके बाद इन इलाकों में राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन तेज हो गए।[42] अगस्त, 2017 में वसुंधरा राजे सरकार ने भरतपुर व धौलपुर के जाटों को ओबीसी श्रेणी में आरक्षण का लाभ दिया।[43]

शिक्षा क्षेत्र में लोक जुम्बिश परियोजना में केंद्र व राज्य के बीच टकराव हुआ, राज्य सरकार इस परियोजना में पर्याप्त प्रशासनिक नियंयण करना चाहती थी, जबकि केन्द्र इसे जनसहभागिता व स्वतंत्र रूप से चलाना चाहती थी। इसी तरह केन्द्र द्वारा राज्यों के लिए लागू किए गए विद्युत सुधारों और ग्रिड से जुड़ी नीतियों पर गहलोत सरकार और केन्द्रीय ऊर्जा मंत्रालय के बीच फंड व अनुदान आवंटन को लेकर वैचारिक और प्रशासनिक मतभेद हुए।[44] श्री अशोक गहलोत ने 16 जनवरी, 1999 से 14 मई 2003 तक अंशुमान सिंह राज्यपाल के साथ कार्य किया। इसके बाद 14 मई 2003 से 22 सितंबर 2003 तक राज्यपाल निर्मल चंद जैन के साथ कार्य किया। पूर्व मुख्यमंत्री श्री गहलोत और राज्यपाल अंशुमान सिंह के मध्य कोई बड़ा राजनीतिक तनाव या विवाद नहीं था। राज्य राजनीति में उस समय तनाव केन्द्र के साथ मतभेदों को लेकर था, जिसका प्रमुख कारण राज्य में विरोधी दल की सरकार का होना था।[45]

## श्रीमति वसुंधरा राजे के राज्यपाल श्री कैलाशपति मिश्र, श्री मदनलाल खुराना से संबंध एवं राज्य राजनीति

नवंबर–दिसंबर, 2003 के राजस्थान विधानसभा चुनाव के बाद भारतीय जनता पार्टी ने प्रचंड जीत दर्ज की और वसुंधरा राजे सिंधिया राज्य की पहली महिला मुख्यमंत्री बनीं।[46] कैलाशपति मिश्र ने उन्हें 08 दिसंबर, 2003 को मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलवाई,[47] राज्यपाल कैलाशपति मिश्र 22 सितंबर, 2003 को राज्य के राज्यपाल बने, लेकिन वे 13 जनवरी, 2004 तक ही राजस्थान के कार्यवाहक राज्यपाल रहे, इस छोटे से कार्यकाल में मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे व उनके बीच कोई विवाद नहीं रहा, कैलाशपति मिश्र के बाद मदनलाल खुराना जो दिल्ली के पूर्व मुख्यमंत्री थे ने राज्यपाल पद 14 जनवरी, 2004 को संभाला, लेकिन केन्द्र में सत्ता परिवर्तन होकर यूपीए की सरकार बनी, जैसा कि सर्वविदित है कि केन्द्र में सरकार परिवर्तित होते ही केन्द्र अपनी पसंद और विचारधारा वाले पार्टी के खास नेताओं या सक्रिय राजनीति से रिटायर हो चुके नेताओं को राज्यपाल पद देती है, इसी के तहत मदनलाल खुराना राज्यपाल बने, लेकिन सत्ता परिवर्तन के बाद उन्होंने 1 नवंबर, 2004 को अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था। इधर 2004 में हुए लोकसभा चुनाव में कांग्रेस नीति गठबंधन यूनाइटेड प्रोग्रेसिव एलांयस यूपीए ने केन्द्र में मिली जुली सरकार का गठन किया[48] जिससे एक बार फिर राजस्थान में केन्द्र के लिए उनके धुर विरोधियों भारतीय जनता पार्टी की सरकार थी की सोच को जन्म मिला। निवर्तमान मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत की हार का मुख्य कारण सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल, सूखा और अकाल में केन्द्र की राहत सहायता की कमी व देरी से आपदाग्रस्त जनता की पीड़ा एवं महंगाई व बेरोजगारी का बढ़ना रहे।[49] राजस्थान में सत्ता परिवर्तन के बाद भाजपा सरकार द्वारा पिछली कांग्रेस सरकार की कुछ लोक–कल्याणकारी योजनाओं, बिजली कंपनियों के निजीकरण के फैसलों और भूमि आवंटन की जांच के आदेशों को लेकर राजनीतिक विवाद और आरोप–प्रत्यारोपों का दौर चला। मदनलाल खुराना और श्रीमति वसुंधरा राजे दोनों एक ही विचारधारा के थे, इसलिए दोनों ही नेताओं के मध्य कोई राजनीतिक, प्रशासनिक मतभेद नहीं रहे।

2003 से 2008 के मध्य राजस्थान की तत्कालीन मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे और केंद्र की यूपीए सरकार के बीच तनाव का मुख्य कारण राजनीतिक मतभेद, केन्द्रीय योजनाओं के आवंटन में देरी और मुख्यतया विचारधारा का टकराव रहा। केन्द्र व राज्य के बीच तनाव का मुख्य कारण विचारधारा का टकराव था, विपरीत विचारधारा वाली सरकार होने से राज्य सरकार द्वारा शुरू किए गए बुनियादी ढ़ाचे और विकास कार्यक्रमों के लिए केन्द्र से मिलने वाले फंड व मंजूरियों में हमेशा देरी होती रहती थी, जिसे राज्य की भाजपा सरकार इसको केन्द्र की उपेक्षा के रूप में देखती थी।[50] राजस्थान में 2007–08 में गुर्जर आरक्षण आंदोलन के कारण राज्य में कानून व्यवस्था चरमरा गई और केन्द्र व राज्य के बीच सुरक्षा बलों की तैनाती को लेकर मतभेद उत्पन्न हुए, इसके अतिरिक्त कानून व्यवस्था बिगड़ गई है और राज्य का शासन संवैधानिक उपबंधों के अधीन चलाना संभव नहीं है, इसलिए राष्ट्रपति शासन लगाए जाने की अटकलें भी लगाई गईं।

राजस्थान के राज्यपाल श्री कैलाशपति मिश्र सितंबर, 2003 से जनवरी, 2004 के मध्य तक राजस्थान के राज्यपाल रहे। इसके उपरांत श्री मदनलाल खुराना राजस्थान के राज्यपाल बनाए गए। श्री मदनलाल खुराना 14 जनवरी, 2004 से 31 अक्टूबर, 2004 तक राजस्थान के राज्यपाल रहे, उनके कार्यकाल में मैडम राजे और राज्यपाल श्री खुराना के मध्य कोई अधिकारिक तनाव का बिंदु नहीं था और केन्द्र में कुछ समय एनडीए की ही सरकार थी। ऐसा माना जाता है कि विचारधारा के आधार पर श्री मदनलाल खुराना को राज्यपाल पद से इस्तीफा देने के लिए मजबूर किया गया था, हालांकि अपने पद से त्यागपत्र देने के उपरांत उन्होंने दिल्ली की राजनीति में फिर से सक्रिय होने की बात कही थी। इसके अलावा राज्यपाल पद पर आसीन होने के कुछ समय उपरांत ही उन्होंने सार्वजनिक रूप से बयान दिया था कि **राज्यपाल का पद सोने के पिंजरे सा** लगता है। राज्यपाल श्री मदनलाल खुराना ने राजभवन में जनसुनवाई शुरू की थी, जिसका राजस्थान के नौकरशाहों ने विरोध किया था और इसे असंवैधानिक बताया था।

जनसुनवाई शुरू करने के उपरांत मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे के साथ उनके मतभेद हो गए थे, इसकी सूचना प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जी के पास पहुंची। मदनलाल खुराना ने राजभवन में जनता की शिकायतों को सुनने के लिए जनसुवाई की जो पहल की वह देश में अपनी तरह का पहला कदम था, जिसे तत्कालीन मुख्यमंत्री द्वारा अपने अधिकारों का हस्तक्षेप मानते हुए पसंद नहीं किया, नौकरशाहों ने भी इसका विरोध किया, उनके इस कदम से राज्य सरकार के कामकाज में राज्यपाल का हस्तक्षेप बढ़ा और मुख्यमंत्री महोदय ने इसकी शिकायत प्रधानमंत्री जी से कर दी। श्री मदललाल खुराना ने अपना इस्तीफा राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को सौंपने से पूर्व दिल्ली में प्रधानमंत्री वाजपेयी एवं पार्टी के नए अध्यक्ष आडवाणी से मुलाकात कर राष्ट्रपति को त्यागपत्र सौंपने पर अपनी सहमति दी और दिल्ली के विकास के लिए काम करने की इच्छा जाहिर की। गौरतलब है कि दिल्ली के पूर्व मुख्यमंत्री और पूर्व केन्द्रीय मंत्री श्री खुराना को दिसंबर, 2003 में दिल्ली विधानसभा चुनाव में भाजपा की हार के बाद तत्कालीन केन्द्र सरकार ने राजस्थान राज्य का राज्यपाल बना दिया था।[51]

## मुख्यमंत्री श्रीमति वसुंधरा राजे एवं राज्यपाल प्रतिभा देवीसिंह पाटिल के परस्पर संबंध, धर्म स्वतंत्रता विधेयक, केन्द्र का दबाव एवं राज्य राजनीति

मदनलाल खुराना के बाद टी. वी. राजेश्वर को राजस्थान के राज्यपाल का अतिरिक्त कार्यभार सौंपा गया। 8 नवंबर, 2004 को प्रतिभा देवीसिंह पाटिल ने पूर्णकालिक राज्यपाल के रूप में राजस्थान के राज्यपाल का पद संभाला।[52] राज्यपाल प्रतिभादेवी सिंह पाटिल और मुख्यमंत्री राजे के मध्य संबंध मूलतः पेशेवर, गरिमापूर्ण और संवैधानिक थे। महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों महिलाएं अलग–अलग राजनीतिक विचारधाराओं से होने के बावजूद दोनों ने एक–दूसरे के कार्यक्षेत्र का सम्मान किया और राज्य के प्रशासनिक मामलों में एक परिपक्व राजनीतिक संतुलन बनाए रखा। दोनों महिलाएं जो संवैधानिक पदों पर आसीन थीं, उनके साथ एक दुर्लभ संयोग यह था कि उस समय राजस्थान विधान सभा अध्यक्षा सुमित्रा सिंह थी। यह संयोग भारतीय राजनीति के लिए एक दुर्लभ ऐतिहासिक संयोग ही था। राज्यपाल के रूप में प्रतिभा देवी सिंह पाटिल ने बिना किसी राजनीतिक पूर्वाग्रह के अपने दायित्वों का निर्वहन किया और वसुंधरा राजे की सरकार के साथ समन्वयपूर्ण ढंग से कार्य किया।

राजस्थान विधानसभा में धर्म स्वतंत्रता विधेयक वसुंधरा राजे की सरकार के कार्यकाल में अप्रेल, 2006 में पारित किया गया, तत्कालीन राज्यपाल प्रतिभा पाटिल ने इस विधेयक को यह कहते हुए मंजूरी देने से इंकार कर दिया था कि इसके कुछ प्रावधान भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता के खिलाफ हैं। उन्होंने कहा कि इसकी कुछ धाराएं भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अंतरात्मा की स्वतंत्रता और धर्म को मानने, उसका पालन करने और उसका प्रचार करने की स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है। उन्होंने 19 मई, 2006 को पुनर्विचार के लिए इसे राज्य कैबिनेट को लौटा दिया। राज्य सरकार ने इसे 12 जून, 2006 को बिना किसी बदलाव के दोबारा राज्यपाल के पास भेज दिया।[53] राज्यपाल प्रतिभा देवी सिंह पाटिल ने इस विधेयक पर एक साल तक कोई फैसला नहीं लिया और मई 2007 में इसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रख लिया। मुख्यमंत्री राजे ने राज्यपाल के विधेयक के संबंध में दृष्टिकोण को असंवैधानिक बताया। तत्कालीन कानून मंत्री और संपूर्ण सरकार ने यह तर्क दिया कि विधानसभा से पारित होने के बाद राज्यपाल महोदय के लिए संवैधानिक बाध्यता होती है कि वे इस पर हस्ताक्षर करें।[54] 2008 वाला यह विधेयक कभी कानून नहीं बन पाया, इसे भजनलाल सरकार द्वारा वापिस लिया जाकर इसके स्थान पर 9 सिंतबर, 2025 को राजस्थान गैर–कानूनी धर्मान्तरण निषेध अधिनियम, 2025 पारित किया गया, इसे तत्कालीन राज्यपाल हरिभाऊ बागड़े ने 03 अक्टूबर, 2025 को अपनी मंजूरी दी और यह कानून बन गया।[55] 6 सितंबर, 2007 को शैलेन्द्र सिंह राजस्थान के राज्यपाल बने। वसुंधरा राजे की सरकार के दौरान राज्य विधानसभा में गुर्जर आरक्षण विधेयक पारित हुआ तो राज्यपाल ने कानूनी सलाह लेने का बहाना बनाकर विधेयक अपने पास रोके रखा। एक ईमानदार प्रशासक के रूप में श्री शैलेन्द्र सिंह ने भाजपा शासन के दौरान राज्य विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति की शक्तियों को सीमित करने वाले विधेयक पर हस्ताक्षर नहीं किए और उसका विरोध किया। राजे

सरकार के कार्यकाल में निजी शिक्षण संस्थानों को भूमि आवंटन के तरीके से राज्यपाल श्री शैलेन्द्र सिंह खुश नहीं थे, उनका कहना था कि निजी संस्थाओं की साख की जांच किए बिना रियायती दरों पर उन्हें शिक्षण संस्थानों को खोलने के लिए भूमि आवंटित सावधानीपूर्वक करनी चाहिए या फिर नहीं करनी चाहिए।[56]

## मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत के राज्यपाल श्री शैलेन्द्र सिंह, श्री शिवराज पाटिल एवं मार्गरेट अल्वा से संबंध और राज्य राजनीति

प्रतिभा देवीसिंह पाटिल को राज्यपाल से राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार बनाए जाने की घोषणा के बाद उन्होंने राज्यपाल पद से अपना त्यागपत्र दे दिया और डॉ. ए. आर. किदवई 23 जून 2007 को राजस्थान के कार्यवाहक राज्यपाल बने, इसके बाद 06 सितंबर, 2007 को शैलेन्द्र सिंह पूर्णकालिक राज्यपाल बने। 08 दिसंबर 2008 को घोषित 13वीं राजस्थान विधानसभा चुनाव परिणाम के उपरांत राजस्थान में कांग्रेस की सरकार बनी, कांग्रेस ने 96 सीटें प्राप्त की, बीजेपी दूसरे स्थान पर रहीं, बहुमत का आकड़ा किसी भी पार्टी को नहीं मिला, कांग्रेस ने बीएसपी विधायकों के समर्थन से सरकार बनाई।[57]

श्री अशोक गहलोत के मुख्यमंत्रित्व काल में 2008 से 2013 के मध्य सबसे अच्छी बात यह रही कि केन्द्र में कांग्रेस नीति गठबंधन यूपीए की सरकार ही थी, इसलिए केन्द्र के किसी भी तरह के दबाव की कोई संभावना नहीं थी और न ही राज्यपाल के राज्य राजनीति में हस्तक्षेप की कोई शिकायत। विचारधारा के टकराव, केन्द्रीय सहायता में देरी या राज्यपाल द्वारा प्रशासनिक–राजनीतिक मामलों में हस्तक्षेप का कोई बड़ा विवाद या मामला इस काल में सामने नहीं आया। दोनों नेताओं के मध्य संबंध मधुर और सौहार्द्रपूर्ण रहे। दोनों के बीच किसी तरह के टकराव या राजनीतिक विवाद की कोई स्थिति नहीं बनी। एक पूर्व राजनयिक होने के कारण राज्यपाल श्री शैलेन्द्र सिंह की कार्यशैली काफी संयमित रही। उन्होंने राजभवन को रंगभवन बनने नहीं दिया, जहां राजनीति का खतरनाक खेल खेला जाता।[58] जुलाई, 2009 में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत की अध्यक्षता में हुई कैबिनेट की बैठक में पूर्ववर्ती वसुंधरा राजे सरकार द्वारा लाए गए लंबे समय से लंबित विधेयक को मंजूरी दी गई। राजभवन से जारी विज्ञप्ति से ज्ञात होता है कि राज्यपाल श्री शैलेन्द्र सिंह ने राजस्थान अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग/विशेष पिछड़ा वर्ग (गुज्जर एवं अन्य समुदाय) और पूर्व पिछड़ा वर्ग विधेयक 2008 को अपनी मंजूरी दी थी। यह विधेयक राजे सरकार के कार्यकाल में विधानसभा द्वारा पारित कर दिया गया था। राज्यपाल महोदय ने उस समय इस विधेयक को मंजूरी देने में समय लिया, क्योंकि इसमें कई संवैधानिक मुद्दे शामिल थे, जिनके लिए कानूनी राय व सहायता की आवश्यकता थी। श्री बैसला के नेतृत्व में उस समय गुर्जर समुदाय के लोग करोली जिले के हिन्डौन कस्बे के पास धरने पर बैठे थे, कर्नल करोड़ी लाल बैसला के नेतृत्व में समुदाय की आरक्षण संबंधी मांग 2007–2008 से लंबित थी। इसके बाद आरक्षण संबंधी आंदोलन को स्थगित कर दिया गया।[59] 01 दिसंबर, 2009 को राजस्थान के राज्यपाल शैलेन्द्र कुमार सिंह की मृत्यु हो गई।[60] उनकी मृत्यु के बाद हिमाचल प्रदेश की राज्यपाल प्रभा राव को राजस्थान राज्य का अतिरिक्त कार्यभार सौंपते हुए राजस्थान का राज्यपाल बनाया गया, लेकिन नियति को कुछ और ही मंजूर था, श्रीमती प्रभा राव (महाराष्ट्र से कांग्रेस की नेता) का राजस्थान के राज्यपाल रहते हुए 26 अप्रेल, 2010 को निधन हो गया।[61] श्रीमति प्रभा राव के बाद पंजाब के राज्यपाल शिवराज पाटिल को राजस्थान के राज्यपाल का अतिरिक्त कार्यभार सौंपा गया, उन्होंने 28 अप्रेल, 2010 को राजस्थान के राज्यपाल का पदभार ग्रहण किया था।[62] शिवराज पाटिल पूर्व केन्द्रीय गृहमंत्री थे और मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत जी के साथ उनके संबंध सौहार्द्रपूर्ण और पेशेवर थे। जब शिवराज पाटिल राजस्थान के राज्यपाल थे, तो वे स्वयं संवैधानिक अध्यक्ष थे, तो श्री अशोक गहलोत कार्यकारी प्रमुख, उनके बीच प्रशासनिक मामलों, प्रशासनिक निर्णयों और राज्य के विकास को लेकर एक सामान्य और सहयोगपूर्ण संबंध रहा। दोनो ही नेता भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता थे। दोनों के बीच सार्वजनिक विवाद का अभाव रहा। इसके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि केन्द्र

में उस समय यूपीए की ही सरकार थी, मुख्यमंत्री–राज्यपाल और केन्द्रीय सरकार की विचारधारा एक ही थी, इसलिए तनाव, खींचतान की कोई गुंजाइश नहीं थी।[63] शिवराज पाटिल को 11 मई, 2012 को राजस्थान राज्य के राज्यपाल के अतिरिक्त कार्यभार से मुक्त किया गया।

## राज्यपाल मार्गरेट अल्वा एवं श्री अशोक गहलोत के परस्पर असहज–तनावपूर्ण संबंध और राज्य राजनीति

स्वतंत्र विचारों की धनी और निर्डर छवि वाली श्रीमति मार्गरेट अल्वा को 12 मई, 2012 को राजस्थान का राज्यपाल बनाया गया, उन्हें सोनिया गांधी की सिफारिश पर श्री अशोक गहलोत की इच्छा के विरूद्ध राजस्थान का राज्यपाल बनाया गया, जबकि श्री अशोक गहलोत आज्ञाकारी व नाममात्र के राज्यपाल की नियुक्ति चाहते थे। वे 07 अगस्त, 2014 तक राजस्थान की राज्यपाल रहीं। वे कांग्रेस की केन्द्रीय सरकार में केन्द्रीय मंत्री के पद पर रही थीं।[64] मार्गरेट अल्वा जब राजस्थान की राज्यपाल थीं तो मुख्यमंत्री अशोक गहलोत के साथ उनके संबंध मुख्य रूप से संवैधानिक मर्यादाओं और कामकाज की शैली को लेकर तनावपूर्ण रहे, बावजूद इसके कि दोनों एक ही राजनीतिक दल से थे।[65] 12 मई, 2012 को राज्यपाल बनने के बाद से ही राज्यपाल अल्वा ने अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और सक्रिय राज्यपाल के रूप में स्वयं को रखा। शपथ ग्रहण समारोह से एक दिन पहले जब वे जयपुर रेल्वे स्टेशन उतरी तो उन्होंने मुख्यमंत्री से सम्मान स्वरूप स्वागत पुष्प स्वीकार किए, लेकिन वहां उपस्थित विपक्षी नेता श्रीमति राजे को गले लगाया, जिसे मुख्यमंत्री समर्थकों ने सहजता से नहीं लिया और इस पर अपनी आपत्ति दर्ज कराई। अंग्रेजी भाषी श्रीमति अल्वा को कांग्रेस गलियारों में हिंदी भाषी गहलोत खेमे को डराने वाली नेता के रूप में जाना जाता है। राज्यपाल महोदया अल्वा ने फरवरी, 2013 में बजट भाषण का एक बड़ा हिस्सा अंग्रेजी में पढ़ने और बजट भाषण की शुरूआत व अंत हिंदी में करने की सोची थी, गहलोत ने इस पर अपनी राय व्यक्त करते हुए उन्हें बताया कि ऐसा करने पर विपक्ष वॉकआउट कर सकता था। बावजूद इसके उन्होंने बजट भाषण का आरंभ हिंदी से किया और फिर भाषण को मेज पर रखकर कहा कि शेष अंशों या बचे हुए भाग को सदन पढ़ा हुआ मान ले, उनका मानना था कि हिंदी में बजट संबंधी तकनीकी शब्दों को समझना कठिन होता है। मार्च, 2013 में जब उन्होंने उदयपुर व बांसवाड़ा के आदिवासी क्षेत्रों का दौरा किया था और सड़के टूटी हुई पाई जाने पर उन्होंने प्रशासकों से लिखित स्पष्टीकरण मांगा। दौरे के दौरान उन्होंने बालिका छात्रावास में पुरूष कर्मचारी पाए जाने पर उसकी जगह महिला कर्मचारी ही रखने की बात कही, एक अन्य बालिका छात्रावास में शौचालय नहीं होने पर उन्होंने संबंधित उत्तरदायी अधिकारियों से सवाल किया कि क्या वे अपनी बेटियों को यहां रहने भेजेगें? शर्म कीजिए। 8 मार्च, 2013 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर आयोजित एक कार्यक्रम में न जाने की सलाह को ठुकराते हुए उन्होंने कहा कि मैं सार्वजनिक कार्यक्रम में सरकार से महिला सुरक्षा की मांग करने जा रही हूं और महिला सुरक्षा की मांग सरकार के खिलाफ कैसे हो सकती है ?

राज्य के कुलाधिपति के अधिकारों का उपयोग करते हुए उन्होंने राज्य के नौकरशाहों को एक दशक से अधिक समय से रिक्त पड़े 1000 से अधिक विश्वविद्यालयी पदों को भरने के लिए निर्देशित किया। मई, 2013 में उन्होंने संविधान की 5वीं अनुसूची का हवाला देते हुए राज्य के 5 आदिवासी जिलों के विकास के लिए निर्धारित 4700 करोड़ रूपये के वार्षिक बजट की निगरानी को संभाल लिया। उनका मानना था ज्यादातर ये राशि खर्च ही नहीं होती थी। 9 मई, 2013 को जयपुर में हरित भवनों और नवीकरणीय ऊर्जा पर आयोजित एक राष्ट्रीय सम्मेलन में उन नौकरशाहों के दावों की आलोचना की, जिनमें कहा गया था कि उदयपुर शहर की झीलें बदबूदार हैं। उन्होंने प्राकृतिक संपत्ति झीलों को नुकसान पहुंचाने वाले बिल्डरों और प्रशासन को जिम्मेदार व दोषी ठहराया। जून, 2013 में जब राज्यपाल अल्वा माऊंटआबू में अपने प्रवास पर थीं, तो उन्होंने सड़कों पर गंदगी को देखकर अधिकारियों से खुद ही सफाई करने की बात कही, जिसके बाद प्रशासन ने तुरंत सड़कों की सफाई करवा दी। राज्यपाल अल्वा कांग्रेसी नेता और संवैधानिक पद पर आसीन होने के बावजूद मुख्यमंत्री श्री गहलोत का विरोध

करने से नहीं हिचकिचाई, एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम का इस लेख में उल्लेख किया जाना जरूरी हो जाता है। जयपुर स्थित राजभवन में राष्ट्रपति महोदय श्री प्रणव मुखर्जी के सम्मान में राज्यपाल श्रीमती अल्वा की अगुवाई में 9 जुलाई 2013 को रात्रिभोज का आयोजन किया गया था, इस आयोजन में विशिष्ट अतिथि के रूप पूर्व मुख्यमंत्री श्रीमती वसुंधरा राजे भी उपस्थित थी, मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत अपनी पत्नी सहित उपस्थित थे, सभी मैडम वसुंधरा राजे को देखकर आश्चर्यचकित थे, जो शायद प्रोटोकॉल का उल्लंघन भी था, स्वयं प्रोटोकॉल अधिकारियों ने इसकी पुष्टि भी की थी।[66]

सुप्रीम कोर्ट के एक निर्णय जिसमें कहा गया था कि मुफ्त उपहार और वादे चुनावी निष्पक्षता को नष्ट कर देते हैं, पर अपनी सहमति व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि दिसंबर 2013 में राजस्थान में चुनाव होने वाले हैं और गहलोत सरकार साड़ियां, टेबलेट, लैपटॉप व कंबल के बदले नकद राशि बांट रही है, जो चुनावों में धनबल को बढ़ावा देता है। मार्गरेट अल्वा राजभवन में 'ट्राइबल वेलफेयर सेल' (जनजाति कल्याण प्रकोष्ठ) और विश्वविद्यालयों में सुधारों को लागू करने की नीतियों पर गहलोत सरकार से असहज हो गई थी, जिसके बाद मुख्यमंत्री श्री गहलोत के खेमे को ऐसा लगा कि राज्यपाल राजभवन के जरिए एक समानांतर शक्ति केन्द्र चला रही हैं। इसके अलावा राज्यपाल राज्य के दूरदराज के क्षेत्रों में आपदाग्रस्त लोगों से मिलतीं और अधिकारियों को दिशा–निर्देश देतीं, जो मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत को अपने कार्यक्षेत्र में राज्यपाल का हस्तक्षेप प्रतीत होता था। इतना ही नहीं राज्यपाल अल्वा दिखावा पसंद नहीं थीं, उन्होंने काफिले से अग्निशमन एवं एम्बुलेंस जैसी गाड़ियों को कम किया और केवल एक ही गाड़ी तक अपने काफिले को सीमित कर दिया। गहलोत राज्यपाल से असहज होने के बावजूद उनकी बात को मानने, समझने के लिए बाध्य रहे, क्योंकि वे कभी गलत नहीं होती थीं और संवैधानिक सीमाओं में रहकर ही कार्य करती थी, हालांकि उनके कार्य का तरीका थोड़ा अलग जरूर था।[67]

## मुख्यमंत्री श्रीमति वसुंधरा राजे के राज्यपाल मार्गरेट अल्वा एवं कल्याण सिंह के साथ संबंध व राज्य राजनीति

वर्ष 2013 से 2018 के बीच राजस्थान की तत्कालीन मुख्यमंत्री राजे और राज्य के राज्यपालों के मध्य संबंध मुख्य रूप से औपचारिक, गरिमापूर्ण और संवैधानिक रहे। इस कार्यकाल के दौरान किसी भी बड़े टकराव या विवाद की स्थिति नहीं बनी थी। मार्गरेट आल्वा मई 2012 में यूपीए द्वारा नियुक्त राज्यपाल रहीं और 07 अगस्त 2014 तक वे राज्य की राज्यपाल रहीं। केन्द्र में मई 2014 में यूपीए शासन का अंत हुआ और एनडीए का शासन स्थापित हुआ और राज्यों के राज्यपाल बदले गए। मार्गरेट अल्वा के स्थान पर सितंबर, 2014 में श्री कल्याण सिंह राज्यपाल बने, जो सितंबर, 2019 तक राज्य के राज्यपाल रहे। दिसंबर 2013 के चुनावों में प्रचंड बहुमत प्राप्त करने के बाद वसुंधरा राजे को मुख्यमंत्री पद की शपथ मार्गरेट आल्वा ने ही दिलवाई थी। राजे के साथ उनके प्रशासनिक और नीतिगत मामलों में समन्वय रहा। मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे और राज्यपाल कल्याण सिंह के मध्य एक–दूसरे के प्रति गहरा सम्मान देखा गया। कल्याण सिंह के कार्यकाल में राज्य सरकार द्वारा पारित कई महत्वपूर्ण विधेयकों और योजनाओं को राजभवन से सहज रूप से मंजूरी मिली, लेकिन नवंबर–दिसंबर, 2018 में राजस्थान में पुनः सत्ता परिवर्तन हुआ। श्री अशोक गहलोत मुख्यमंत्री बने, लेकिन केन्द्र में मई, 2019 में एनडीए की ही सरकार बनी और यह राजस्थान का दुर्भाग्य रहा कि राज्य में कांग्रेस की और केन्द्र में भाजपा गठबंधन की सरकार रही, इसलिए केन्द्रीय योजनाओं को राज्य में प्रभावी ढंग से लागू करने में कठिनाइयां उत्पन्न हुई और विकास कार्यों के लिए केन्द्रीय सहायता में कमी और देरी की गई। दिसंबर, 2018 में कांग्रेस सरकार बनने के बाद राजस्थान में श्री अशोक गहलोत और राज्यपाल कल्याण सिंह और श्री कलराज मिश्र के मध्य संबंध मुख्य रूप से राजनीतिक मतभेदों और सत्ता के टकराव से प्रभावित रहे।[68]

## मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत के राज्यपाल कल्याण सिंह एवं कलराज मिश्र के साथ संबंध एवं राज्य राजनीति

मार्च, 2019 में राज्यपाल कल्याण सिंह द्वारा उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ में एक जनसभा के दौरान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के लिए वोट मांगें गए और उनके द्वारा उनकी प्रशंसा भी गई, जिससे बाद विवाद उत्पन्न हुआ और आरोप लगे कि वे संवैधानिक पद पर रहते हुए पार्टी के लिए प्रचार कर रहे हैं। मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने उनके इस बयान पर कड़ी आपत्ति जताते हुए इसे राज्यपाल के संवैधानिक पद की गरिमा और निष्पक्षता के खिलाफ बताया। इस मामले को लेकर चुनाव आयोग ने भी राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजी।[69]

राजस्थान में 2020 में जो सियासी संकट उत्पन्न हुआ था, उसे कोई नहीं भूला है, दरअसल श्री सचिन पायलट ने अपनी पार्टी से बगावत कर दी, श्री सचिन पायलट द्वारा की गई बगावत के पीछे मुख्य कारण मुख्यमंत्री की कुर्सी को लेकर महत्वाकांक्षा, श्री गहलोत जी के साथ सत्ता का टकराव और पार्टी कार्यकर्ताओं एवं विधायकों की अनदेखी जैसे प्रमुख कारण थे। दोनों नेताओं के मध्य संघर्ष 2018 में ही शुरू हो गया था, चुनाव से पूर्व पार्टी द्वारा टिकटों के बंटवारे को लेकर और बाद में राजस्थान का अगला मुख्यमंत्री कौन होगा ? को लेकर विवाद शुरू हुआ, लेकिन जब पार्टी आलाकमान ने श्री सचिन पायलट की अनदेखी करते हुए अनुभवी श्री गहलोत को मुख्यमंत्री बनाए जाने के लिए निर्णय लिया तो इस संकट के बीज बो दिए गए। यह गरमागरमी और तनाव उस समय पार्टी के लिए संकट में बदल गया जब 2020 में पायलट ने 18 विधायकों के साथ गहलोत और पार्टी के खिलाफ विद्रोह कर दिया, राजस्थान कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष सचिन पायलट ने अपनी ही सरकार के खिलाफ भूख हड़ताल शुरू कर दी। इस उपवास के जरिए श्री सचिन पायलट ने राजस्थान की पूर्व भाजपा सरकार के भ्रष्टाचार के आरोपों पर कार्रवाई की मांग करते हुए एक दिन का उपवास रखा। पायलट ने अपनी ही सरकार पर आरोप लगाया कि श्री गहलोत सरकार राजस्थान में भाजपा शासन के दौरान हुए भ्रष्टाचार के मामलों की जांच करने में एवं दोषियों को सजा देने में विफल रही थी। इतना ही नहीं उनके द्वारा श्री अशोक गहलोत पर भाजपा नेता व पूर्व मुख्यमंत्री के साथ मिलीभगत करने का भी आरोप लगाया और आग में घी डालने का काम किया।

श्री सचिन पायलट ने भ्रष्टाचार की जांच की मांग के संबंध में सरकार को सीधे पत्र भी लिखे, लेकिन उन्हें कोई ठोस जवाब नहीं मिला, पार्टी आलाकमान ने उन्हें ऐसे मामले सार्वजनिक रूप से उठाने की बजाए पार्टी के मंचों से उठाने को कहा। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि 2018 के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को जो सफलता मिली, उसमें सचिन पायलट का बहुत महत्वपूर्ण योगदान था, सभी को यह उम्मीद थी कि सचिन पायलट राजस्थान की राजनीति के नए चेहरे और अगले मुख्यमंत्री होगें और उनके हाथों में पार्टी और राज्य का भविष्य सुरक्षित रहेगा, लेकिन पार्टी आलाकमान ने श्री गहलोत को ही मुख्यमंत्री बनाया और सचिन पायलट को उपमुख्यमंत्री का पद मिला। श्री सचिन पायलट की बगावत के बाद गहलोत ने उन्हें मंत्री पद से हटा दिया और इस संकट के समय यह बात भी सामने आई कि भाजपा गहलोत विरोधी खेमे के संपर्क में है, लेकिन सचिन पायलट और उनके सहयोगी विधायकों ने इस अफवाह को सिरे से ही खारिज कर दिया, श्री पायलट ने पार्टी छोड़ने की बजाए पार्टी में बने रहना उचित माना। वे ज्योतिरादित्य सिंधिया की तरह पार्टी से अलग होकर भाजपा में शामिल नहीं हुए। अंततः राहुल व प्रियंका गांधी एवं कांग्रेस के केन्द्रीय नेतृत्व विशेष रूप से प्रियंका गांधी और राहुल गांधी के सीधे हस्तक्षेप के बाद इस संकट से छुटकारा मिला।[70] पार्टी आलाकमान ने सचिन पायलट की शिकायतों के निवारण के लिए तीन सदस्यीय एक समिति का भी गठन किया। पायलट और गांधी परिवार के बीच बातचीत के बाद अगस्त 2020 में सुलह हो गई, जिसके बाद बागी विधायक वापिस जयपुर लौट आए और गहलोत सरकार ने विधानसभा में बहुमत साबित कर दिया। 14 अगस्त, 2020 को श्री अशोक गहलोत के नेतृत्व वाली राजस्थान सरकार ने विधानसभा में विश्वास मत हासिल किया।[71] श्री सचिन पायलट को उप–मुख्यमंत्री और प्रदेशाध्यक्ष का पद तो मिला लेकिन उनके और मुख्यमंत्री के मध्य लगातार प्रशासनिक और राजनीतिक निर्णयों को लेकर मतभेद बने रहे, पायलट समर्थकों का आरोप था कि

उन्हें सरकार और संगठन में उचित स्थान, महत्व और निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं दी गई। श्री पायलट समर्थकों की यह भी शिकायत थी कि गहलोत सरकार अपनी नीतियों और फैसलों में कांग्रेस के अपने विधायकों की बजाए निर्दलीय और अन्य दलों से आए विधायकों को ज्यादा तरजीह दे रही थी।[72] श्री पायलट की बगावत का तत्कालीन कारण था कि जब एसओजी ने राजस्थान में राज्यसभा चुनाव के दौरान कथित खरीद–फरोख्त की जांच के सिलसिले में सचिन पायलट को अपना बयान दर्ज कराने को कहा और इस संबंध में उनको नोटिस भी भेजा था। पायलट पार्टी में अपनी लगातार हो रही अनदेखी से नाराज होकर अपने समर्थित विधायकों के साथ हरियाणा के मानेसर चले गए और वहां उन्होंने गहलोत सरकार के अल्पमत में होने का दावा किया। जवाब में उन्हें उपमुख्यमंत्री और प्रदेश कांग्रेस के पद से हटा दिया गया। गहलोत सरकार ने बहुमत साबित करने के लिए विधानसभा सत्र बुलाने के प्रस्ताव को राज्यपाल कलराज मिश्र को भेजा। विधानसभा के नए सत्र के आयोजन को लेकर राज्यपाल और सरकार के बीच गतिरोध उत्पन्न हुआ, इस सत्र् के दौरान श्री अशोक गहलोत सचिन पायलट की बगावत के बाद अपना बहुमत साबित करना चाहते थे, गहलोत मंत्रिमण्डल ने राज्यपाल कलराज मिश्र को एक संशोधित पत्र भेजकर उनसे 31, जुलाई 2020 से सत्र बुलाने का आग्रह किया। राज्यपाल ने राज्य सरकार द्वारा किए गए अनुरोध पर आपत्ति जताई। राजभवन को भेजे गए नए प्रस्ताव में कहा गया था कि सत्र् के दौरान कोविड 19 महामारी पर विशेष चर्चा के साथ–साथ 6 विधेयक भी पेश किए जाएंगें। कैबिनेट नोट में सदन में शक्ति परीक्षण का कोई जिक्र नहीं था। जिसका उद्देश्य बर्खास्त उप–मुख्यमंत्री सचिन पायलट के विद्रोह के बाद उत्पन्न उथल–पुथल के बीच कांग्रेस सरकार के बहुमत को साबित करना था। अंत में राज्यपाल ने सत्र् बुलाने की अनुमति देकर इस तनाव का अंत कर दिया।[73]

श्री सचिन पायलट के विद्रोह के दौरान राजस्थान के राज्यपाल कलराज मिश्र ने एक तटस्थ और संवैधानिक मध्यस्थ की भूमिका निभाई।[74] जुलाई, 2020 में जब राजस्थान में सचिन पायलट के विरोध के कारण सियासी संकट उत्पन्न हुआ तो सबसे पहले सचिन पायलट के नेतृत्व वाले बागी गुट पर सबका ध्यान गया, इसके बाद मुख्यमंत्री अशोक गहलोत ने उन्हें सबसे पहले उप–मुख्यमंत्री पद से हटा दिया, फिर सचिन पायलट और 18 अन्य कांग्रेस विधायकों को दलविरोधी गतिविधियों के आरोप में अयोग्य घोषित करने का प्रस्ताव विधानसभा अध्यक्ष सीपी जोशी के सामने रखा गया। इसके बाद मुख्यमंत्री अशोक गहलोत ने इस पर बात पर जोर दिया कि राज्यपाल राजस्थान में कोरोना वायरस महामारी से उत्पन्न स्थिति पर चर्चा करने के लिए विधानसभा सत्र बुलाएं, कोरोना महामारी के बीच विधानसभा सत्र् बुलाने के कारण पर राज्यपाल ने सवाल उठाने के बाद गहलोत मंत्रिमण्डल से दो बार स्पष्टीकरण मांगा। राज्यपाल कलराज मिश्र ने इस पर आपत्ति जताते हुए कहा कि गहलोत तो सत्र् बुलाने के पीछे कोरोना महामारी पर चर्चा करने का हवाला दे रहे हैं, जबकि मीडिया में मुख्यमंत्री गहलोत ने बहुमत साबित करने की बात कही। महत्वपूर्ण बात यह रही कि गहलोत साहब से किसी ने भी उनकी सरकार के बहुमत को साबित करने के लिए नहीं कहा, विपक्षी भाजपा, पायलट बागी खेमे ने भी अविश्वास प्रस्ताव लाने से परहेज ही किया। जुलाई, 2020 में सचिन की बगावत के बाद तत्कालीन राज्यपाल कलराज मिश्र ने विधानसभा सत्र बुनाने के कांग्रेस सरकार के प्रस्ताव को कानूनी बिंदुओं और कोविड–19 के आधार पर कई बार लौटा दिया था, इसके बाद मुख्यमंत्री गहलोत के राजभवन में धरने और कांग्रेस आलाकमान के हस्तक्षेप के बाद ही उन्होंने 14 अगस्त, 2020 से सत्र बुलाने की मंजूरी दी।[75]

**राजनीतिक संकट और राज्यपाल श्री कलराज मिश्र की भूमिका –**

मुख्यमंत्री अशोक गहलोत बहुमत साबित करने के लिए विधानसभा सत्र बुलाना चाहते थे, लेकिन राज्यपाल ने संवैधानिक और महामारी संबंधों का हवाला देकर इसे तीन बार खारिज कर दिया। राजस्थान में राजनीतिक संकट 14 अगस्त 2020 को होने वाले विशेष विधानसभा सत्र में अपने चरम पर पहुंच गया, जो संभवत कांग्रेस सरकार और बागी विधायकों के भविष्य का फैसला करता। राजस्थान में राजनीतिक घटनाक्रम शायद ही कभी इतना रोचक रहा

हो, जितना जुलाई 2020 में चल रहा घटनाक्रम रहा। सत्ताधारी कांग्रेस की राज्य इकाई के भीतर चल रही बगावत की गाथा, जिसने पार्टी को विभाजित करने और सरकार को गिराने की धमकी दी थी, जिसके कारण अनायास सबका ध्यान विधानसभा सत्र पर गया, ने सबका ध्यान अपनी ओर खींचा। 14 अगस्त, 2020 को आयोजित विशेष विधानसभा सत्र मुख्यमंत्री व पूर्व उपमुख्यमंत्री और पार्टी की राज्य इकाई के पूर्व अध्यक्ष सचिन के बीच चल रही तीव्र गुटबाजी की पृष्ठभूमि में हुआ। इस राजनीतिक संकट के समय राज्यपाल कलराज मिश्र के पद और शक्तियों पर तब सवाल खड़े हुए, जब उन्होंने विधानसभा सत्र बुनाने के गहलोत के बार–बार अनुरोध को ठुकरा दिया। राज्यपाल को तीन पत्र लिखने और गहलोत तथा विधायकों द्वारा राजभवन के प्रांगण में नाटकीय धरने के बाद ही राज्यपाल सत्र बुलाने के लिए बाधित हुए थे।[76] गहलोत सरकार द्वारा बार–बार सत्र् बुलाने की मांग के संबंध में राज्यपाल का तर्क था कि जब सरकार के पास बहुमत है तो सत्र बुलाने की कोई तत्काल आवश्यकता नहीं है, उन्होंने सरकार से यह स्पष्ट करने के लिए कहा कि क्या वे विश्वास मत के लिए सत्र बुलाना चाहते हैं या किसी अन्य कारण से, क्योंकि एक तरफ वे कोरोना महामारी पर चर्चा करवाने के लिए सत्र् बुलाने की बात कह रहे थे तो दूसरी ओर मीडिया में बहुमत साबित करने की बात।[77] अंततः गहलोत सरकार द्वारा राज्यपाल को सत्र बुलाने संबंधी चौथा प्रस्ताव भेजे जाने के बाद 14 अगस्त, 2020 से विधानसभा सत्र बुलाया गया, जिसमें गहलोत सरकार ने बहुमत साबित किया।[78] दरअसल सत्र् बुलाने में देरी किए जाने के पीछे मंशा गहलोत विरोधी गुट को समय देकर सरकार को अल्पमत में लाने और पार्टी को दो धड़ों में बांटकर सत्ता हथियाने की थी।

राज्यपाल कलराज मिश्र ने 2022–2023 में कुछ विधेयकों और महत्वपूर्ण मुदों पर नाराजगी व्यक्त की, लेकिन मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत ने इन सभी मुद्दों को चतुराई से संभाला। राज्यपाल ने विधानसभा सत्र् को लंबे समय तक स्थगित करने पर सरकार से नाराजगी जाहिर की और सरकार पर सीधा निशाना साधा और कहा कि इस तरह की परंपरा विधायी प्रक्रियाओं को नुकसान पहुंचाती है, जो संसदीय व्यवस्था के विरूद्ध होती है। सदन के पास कोई कामकाज न रहने के बावजूद सत्र को चलाना गलत था। इस तरह की परंपरा तब से राजस्थान में शुरू हुई जब राज्यपाल ने डिप्टी सीएम पायलट और 18 विधायकों के गहलोत के खिलाफ बगावत करने के बाद फ्लोर टेस्ट के लिए विधानसभा सत्र् बुलाने के सरकार के अनुरोध को बार बार खारिज कर दिया था। वर्ष 2022 के अंत में राज्यपाल कलराज ने निजी विश्वविद्यालयों के तीन बिलों का पांच महीने तक अध्ययन करने के बाद उन्हें वापिस लौटा दिया था, लेकिन गहलोत ने इस पर अपनी कोई प्रतिक्रया नहीं दी और तब दोनों के मध्य कोई गतिरोध भी उत्पन्न नहीं हुआ था। इतना ही नहीं राज्यपाल ने 2020 में लागू केंद्रीय कृषि कानूनों के खिलाफ लाए गए विधेयकों को भी अपने पास रोके रखा, लेकिन श्री अशोक गहलोत जी कि राजनीतिक चुप्पी से राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य कोई गतिरोध पैदा नहीं हुआ।[79]

## राज्यपाल हरिभाऊ किसनराव बागड़े एवं मुख्यमंत्री श्री भजनलाल शर्मा के परस्पर संबंध एवं राज्य राजनीति

31 जुलाई, 2024 को हरिभाऊ किसनराव बागड़े ने राजस्थान के 45वें राज्यपाल के रूप में पद और गोपनीयता की शपथ ली, उन्होंने कलराज मिश्र का स्थान लिया था। उन्हें राजस्थान उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश मनिंद्र मोहन श्रीवास्तव ने शपथ दिलाई थी।[80] राज्यपाल श्री हरिभाऊ और मुख्यमंत्री श्री भजनलाल के मध्य संबंध सामान्य और सौहार्दपूर्ण रहे। दोनों नेताओं के मध्य किसी भी बड़े राजनीतिक विवाद या टकराव की कोई जानकारी या प्रमाण उपलब्ध नहीं है, हां इतना जरूर है कि कुछ मुद्दों पर मत–भिन्नता जरूर देखने को मिलती है। कुछ समय पहले एक सार्वजनिक कार्यक्रम में राज्यपाल श्री हरिभाऊ बागड़े ने किसानों के हितों की वकालत करते हुए अपनी बात रखी थी। उन्होंने सरकार को अन्नदाताओं के हितों को सुरक्षित रखने के लिए कड़े निर्देश जरूर दिए थे। राज्यपाल श्री बागड़े ने उच्च शिक्षा में अनियमितताओं पर सख्त रूख अपनाते हुए बाबा आम्टे दिव्यांग विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर देव स्वरूप को उनके पद से हटा दिया था। राज्य सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारियों पर इस

तरह की सीधे तौर पर की गई बड़ी कार्रवाई को उनकी कार्यशैली और सरकार की नीतियों के बीच के अंतर के रूप में देखा गया। इसके अलावा राज्य में महिला सुरक्षा और कानून व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति पर राज्यपाल ने कई बार कड़ी नाराजगी जाहिर की है। बलात्कारियों को लेकर उनके द्वारा दिए गए कड़े बयानों जैसे मौके पर ही सार्वजनिक सजा देना को जानकारों ने सरकार के कामकाज पर एक अप्रत्यक्ष टिप्पणी के रूप में देखा। इसके अतिरिक्त दोनों संवैधानिक प्रमुखों के बीच अक्सर राज्य के विकास, बजट सत्र् और मंत्रिमण्डल विस्तार जैसे मुद्दों पर राजभवन में सकारात्मक बैठकें होती रही हैं। दोनों के मध्य कोई सार्वजनिक टकराव नहीं हुआ है, लेकिन राज्यपाल के रूप में उनकी सख्त प्रशासनिक छवि ने राज्य सरकार के सामने जनता व कानून व्यवस्था से जुड़े मुददों पर एक स्पष्ट चुनौती और निगरानी बनाए रखी है।[81]

## सारांश

राज्य राजनीति का संचालन मुख्य रूप से चार स्तंभों राज्यपाल, मुख्यमंत्री, विधानसभा एवं राज्य की जनता पर टिका है। लेख में उद्धृत तथ्यों से यह साफ होता है कि संविधान निर्माताओं ने जिस मंशा से राज्यपाल पद का सृजन किया था और जिस संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया था, उसमें आज्ञाकारी राज्यपाल[82] या नाममात्र की कार्यपालिका का ही उल्लेख है। राजनीतिक रूप से सक्रिय, स्वतंत्र छवि और सरकार से भिन्न व स्वतंत्र मत वाले, पूर्व राजनीतिज्ञ, पूर्व नौकरशाह एवं पूर्व न्यायाधीश को यह पद नहीं दिया जाना चाहिए। वर्तमान में उससे बिल्कुल भिन्न रूप में यह देखा गया कि राज्यपाल संवैधानिक अध्यक्ष की भूमिका के अतिरिक्त केन्द्र के एजेण्ट की भूमिका निभा रहा है, अनुच्छेद 356 का दुरूपयोग हो रहा है। केन्द्र सरकारों ने अपने विरोधियों की सरकारों को दबाने और राज्य की जनता को अपनी ओर झुकाने के लिए इस पद का उपयोग किया है। बहुत बार यह भी देखा गया कि पार्टी के लिए बेकार हो चुके नेताओं को उपहार स्वरूप यह पद दिया गया, जहां तक मुख्यमंत्री–राज्यपाल के परस्पर संबंधों का प्रश्न है, तो ये संबंध इस बात पर निर्भर करते हैं कि राज्यपाल का व्यक्तित्व कैसा है ? क्या वे अपने स्वतंत्र विचार रखते हैं ? विचारधारा क्या है ? केन्द्र में किस दल की सरकार है ? खण्डित जनमत या पूर्ण जनमत किसके पक्ष में है ? मुख्यमंत्री राज्यपाल के आचरण को किस रूप में लेते हैं, मुख्यमंत्री पूर्ण बहुमत प्राप्त हैं या खण्डित जनमत प्राप्त। क्या राज्य राजनीति केन्द्रीय राजनीति के चारों ओर घूम रही है? प्रधानमंत्री शक्तिशाली व्यक्तित्व वाले हैं या नहीं आदि बातों से राज्य राजनीति और मुख्यमंत्री–राज्यपाल के संबंधों का संचालन होता है। नेहरू, इंदिरा, राजीव गांधी, अटल जी एवं श्री नरेन्द्र मोदी के सशक्त नेतृत्व ने निश्चित रूप से राज्य राजनीति की दिशा व दशा को तय किया है।

## संदर्भ

1. भारतीय संसदीय शासन प्रणाली **ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था से प्रेरित** है और **ब्रिटिश 'वेस्टमिनस्टर' मॉडल** पर आधारित है।
2. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब 1950 में भारत का संविधान लागू हुआ, तब **भारतीय राज्यों को उनकी प्रशासनिक एवं ऐतिहासिक स्थिति के आधार पर 4 श्रेणियों क्रमशः ए बी सी डी में विभाजित किया गया,** राजस्थान बी श्रेणी का राज्य था, जिसमें राजप्रमुख का पद था, लेकिन राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों और 7वें संविधान संशोधन अधिनियम के बाद 1 नवंबर, 1956 को राजप्रमुख के पद के स्थान पर राज्यपाल का पद सृजित किया गया।
3. राजस्थान में राजप्रमुख के पद का सृजन 30 मार्च, 1949 को वृहद राजस्थान के गठन के समय हुआ और **सवाई मानसिंह द्वितीय एकमात्र राजप्रमुख** बने।
4. राज्यपाल की शक्तियाँ का उल्लेख **संविधान के भाग VI** में है।
5. सरदार गुरूमुख निहाल सिंह राजस्थान के प्रथम राज्यपाल थे, जिन्होंने 01 नवंबर, 1956 से 15 अप्रेल, 1962 तक राज्यपाल पद पर कार्य किया।

International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)

E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

6. मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया के कार्यकाल में राजस्थान की राजनीति केन्द्र की ओर झुकी हुई थी अर्थात् राजस्थान की राज्य राजनीति केन्द्रीय नेतृत्व के इर्द–गिर्द घूमती दिखाई देती है।
7. 2 अक्टूबर, 1959 को नागौर से **पंचायतीराज व्यवस्था का आरंभ** हुआ।
8. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता गुरूमुख निहाल सिंह 13 फरवरी, 1955 से 31 अक्टूबर 1956 तक दिल्ली के मुख्यमंत्री रहे।
9. अगस्त 1959 में राजस्थान में **स्वतंत्र पार्टी** की स्थापना श्री सी. राजगोपालाचारी द्वारा की गई थी।
10. डॉ. संपूर्णानंद ने 16 अप्रेल, 1962 से 15 अप्रेल, 1967 तक कार्य किया, आप राजस्थान के दूसरे राज्यपाल थे।
11. **इकनोमिक एण्ड पॉलीटिकल वीकली,** 23 जनवरी, 2021.
12. 13 अप्रेल, 2025 **इंडियन एक्सप्रेस** में सर्वोच्च न्यायालय के **तमिलनाडु राज्य बनाम राज्यपाल विवाद 2025** में आए महत्वपूर्ण निर्णय के बारे में बताया गया कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 154 एवं 163 के अनुसार राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख है, उसके स्वयं के स्वतंत्र विचार और उसकी राजनीतिक दखलअंदाजी संवैधानिक भावना के विरूद्ध है, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि राज्यपाल एक सुपर संवैधानिक सत्ता नहीं है इसलिए उन्हें मंत्रिपरिषद् की सलाह के बिना स्वतंत्र रूप से कार्य करने का अधिकार नहीं है। 8 अप्रेल, 2025 को सर्वोच्च न्यायालय की तीन सदस्यीय खण्डपीठ ने तमिलनाडु सरकार द्वारा राज्य के राज्यपाल के द्वारा राज्य विधानमंडल द्वारा पारित कई विधेयकों पर कोई कार्रवाई न करने के फैसले के खिलाफ दायर याचिका पर सुनाए गए फैसले में यह बात कही कि राज्यपाल को पूर्ण विवेकाधिकार देना का मतलब उसे एक अति–सं वैधानिक व्यक्ति बना देना होगा।
13. **ईटीवी राजस्थान,** 2 दिसंबर, 2023. (इतिहासकार देवेन्द्र कुमार भगत से बातचीत पर आधारित अंश पर केन्द्रित)
14. इंदिरा गांधी के विरूद्ध खड़े हुए थे ये पूर्व सीएम, जाने क्यों छोड़ना पड़ा था पद ? **दैनिक भास्कर**, 5 अगस्त, 2016.
15. श्री बरकत उल्ला खां राजस्थान के **पहले मुस्लिम मुख्यमंत्री** थे।
16. राज्यपाल सरदार जोगेंदर सिंह और मुख्यमंत्री बरकतुल्लाह खान के मध्य विवाद का प्रमुख कारण राज्यपाल द्वारा प्रशासनिक और राजनीतिक मामलों में दखलअंदाजी करना था।
17. राज्यपाल जोगेन्दर सिंह और मुख्यमंत्री हरिदेव जोशी के मध्य प्रशासनिक निर्णयों और राजनीतिक नियुक्तियों को लेकर तनाव उत्पन्न हुआ था।
18. **दैनिक भास्कर,** 19 अक्टूबर, 2018.
19. रिपोर्ट, **न्यूज 18,** 30 अप्रेल, 2020.
20. **हरगोविंद पंत बनाम डॉ. रघुकुल तिलक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने 4 मई, 1979 को निर्णय** दिया कि राज्य का राज्यपाल केन्द्र सरकार के अधीन कोई कर्मचारी या नौकर नहीं है। राज्यपाल एकस्वतंत्र संवैधानिक पदाधिकारी होता है और वह राज्य के कार्यकारी प्रमुख के रूप में कार्य करता है।
21. वी. वेंकटेशन, पहली सामूहिक बर्खास्तगी, **फ्रंटलाइन,** 30 जुलाई, 2004.
22. प्रभु चावला, भैरोसिंह शेखावत ने राजस्थान मुख्यमंत्री माथुर पर लगाए भ्रष्टाचार के आरोप, **इंडिया टुडे,** 15 अप्रेल, 1983.
23. ऑफ द रिकॉर्ड : जब मुख्यमंत्री को आधी रात को इस्तीफा देना पड़ा, **दैनिक भास्कर,** 08 मई, 2012.
24. राजेंद्र बोड़ा, राज्यपाल रहते सीएम पद की शपथ लेने पहुंचे हरिदेव जोशी, **दैनिक भास्कर,** 14 अक्टूबर, 2023.
25. रिपोर्ट, **एबीपी न्यूज** 30 मार्च, 2022.
26. **दैनिक भास्कर,** 16 जुलाई, 2020.

29. 1980 के दशक में राजस्थान की राजनीति में उथल–पुथल का मुख्य कारण कांग्रेस की अंदरूनी कलह थी, जिसने कांग्रेस की हार के मार्ग को प्रशस्त किया और एक दल की प्रधानता वाली दलीयव्यवस्था को द्विदलीय व्यवस्था में स्थापित करने का बीज बो दिया।
30. **जनसत्ता,** 29 नवंबर, 2018.
31. 15 दिसंबर, 1992 को राजस्थान में चौथी बार राष्ट्रपति शासन लागू किया गया।
32. अयोध्या में बाबरी मस्जिद विध्वंस की घटना के समय राजस्थान के राज्यपाल एम. चेन्ना रेड्डी थे।
33. **एस. आर. बोम्मई बनाम भरत संघ मामले** में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि पंथनिरपेक्षता भारत संविधान के मूलभूत ढ़ाचे के अंतर्गत आता है, अगर कोई राज्य सरकार पंथनिरपेक्षता के सिद्धांतों के विरूद्ध काम करती है तो राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है और राज्य सरकार को बर्खास्त किया जाना उचित है।
34. **न्यूज 18,** 24 जुलाई, 2020.
35. बलिराम भगत केन्द्र की कांग्रेस सरकार द्वारा नियुक्त राज्यपाल थे और वे संवैधानिक अध्यक्ष और केन्द्र के एजेण्ट की भूमिका अपने पूरे कार्यकाल में निभाते रहे, जो मुख्यमंत्री श्री शेखावत व उनके बीच तनाव का कारण बना।
36. नवंबर 1998 में हुए विधानसभा चुनाव के बाद कांग्रेस की सरकार में श्री अशोक गहलोत पहली बार विधायक न रहते हुए भी विधायक दल के नेता चुने गए और मुख्यमंत्री बने, 01 दिसंबर, 1998 को श्रीअशोक गहलोत को राज्यपाल श्री अंशुमान सिंह ने मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलवाई।
37. 11 वें, राजस्थान विधानसभा चुनाव परिणाम के लिए राज्य निर्चाचन आयोग की वेबसाइट देखें, इसके अलावा चुनावों की विस्तृत और सांख्यिकीय जानकारी के लिए भारत निर्वाचन आयोग की राजस्थान विधानसभा निर्वाचन सांख्यिकीय डेटा रिपोर्ट देख सकते हैं।
38. राजस्थान : 1952 से अब तक सिर्फ पांच डिप्टी सीएम बने, सचिन पायलट भी शामिल, **जनसत्ता** ऑनलाइन, 15 दिसंबर, 2018.
39. राजस्थान वाज फर्स्ट स्टेट टू एक्सटेण्ड ओबीसी बेनेफिट्स टू जाट्स इन 1999, **टाइम्स ऑफ इण्डिया** 23 फरवरी, 2016.
40. गहलोत सरकार ने 3 नवंबर, 1999 को जाटों को ओबीसी में शामिल कर लिया गया था।
41. जनवरी, 2000 में भरतपुर व धौलपुर के जाटों को भी ओबीसी में शामिल किया गया।
42. 10 अगस्त 2015 को राजस्थान हाईकोर्ट ने भरतपुर और धौलपुर जिलों के जाटों को मिला ओबीसी कोटा रद्द कर दिया, हाईकोर्ट ने आरक्षण इसलिए रद्द किया क्योंकि राज्य सरकार ने इन दोनों जिलों के जाटों को आरक्षण देने से पहले कोई ठोस मात्रात्मक डेटा या सामाजिक–आर्थिक सर्वेक्षण नहीं किया था, इधर राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग ने यह तर्क दिया था कि स्वतंत्रता पूर्व काल में इन दो रियासतों में जाट शासक वर्ग का हिस्सा रहे थे, इसलिए उन्हें बिना उचित जांच के सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ा नहीं माना जा सकता।
43. **राजस्थान पत्रिका,** 23 अगस्त, 2017.
44. टी. के. राजलक्ष्मी, गहलोत की चाल, **फ्रंटलाइन**, 20 जून, 2003.
45. मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत के राज्य के राज्यपालों के साथ कोई बड़े राजनीतिक व प्रशासनिक मतभेद नहीं रहे, लेकिन राज्य में कांग्रेस की और केन्द्र में एनडीए की सरकार होने की वजह से केन्द्र–राज्य संबंधों में तनातनी रही और राज्यपाल इस तनातनी में केन्द्र के हाथों की कठपुतली बने।
46. श्रीमति वसुंधरा राजे सिधिंया राजस्थान की **पहली महिला मुख्यमंत्री**।
47. **टाईम्स ऑफ इण्डिया,** 9 दिसंबर, 2003.

48. अप्रेल–मई, 2004 के मध्य 14वीं लोकसभा के चुनाव हुए और 13 मई, 2004 को परिणाम घोषित किए गए, जिनमें यूपीए की जीत हुई, डॉ. मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने।
49. सम्ब्रत चतुर्वेदी सहायक समाचार संपादक "पूर्व मुख्यमंत्री ने बताए 2003 में कांग्रेस की प्रदेश में हार के कारण," **नवभारत टाइम्स (डिजिटल),** 8 जून, 2023.
50. 2003 से 2008 के मध्य मुख्यमंत्री राजे और केंद्र की यूपीए सरकार के बीच तनाव का मुख्य कारण राजनीतिक मतभेद, केन्द्रीय योजनाओं के आवंटन में देरी और मुख्यतया विचारधारा का टकराव रहा।
51. **राजस्थान पत्रिका,** 02 नवंबर, 2004.
52. 8 नवंबर, 2004 को **प्रतिभा देवी सिंह पाटिल राजस्थान की पहली महिला राज्यपाल** बनीं, आपने 23 जून, 2007 तक इस पद पर कार्य किया।
53. राजस्थान का धर्मान्तरण विरोधी विधेयक राज्यपाल को वापिस भेजा गया, **इकनोमिक्स टाइम्स** 14 जून, 2006.
54. राजस्थान रिलीजन बिल रिजेक्टेड **बीबीसी न्यूज,** 19 मई, 2006.
55. **न्यूज 18,** 3 अक्टूबर, 2025.
56. **टाइम्स ऑफ इंडिया,** 2 दिसंबर, 2009.
57. कांग्रेस बनी सबसे बड़ी पार्टी, बहुमत से 5 सीट दूर, **राजस्थान पत्रिका,** 09 दिसंबर, 2008.
58. वही, 56
59. आरक्षण विधेयक को राज्यपाल की मंजूरी, गुर्जरों का आंदोलन समाप्त करने का फैसला, **टाइम्स ऑफ इण्डिया,** 31 जुलाई, 2009.
60. **राजस्थान पत्रिका** 02 दिसंबर, 2009.
61. राज्यपाल श्रीमति प्रभा राव का 26 अप्रेल, 2010 को निधन हुआ, राजस्थान के राज्यपाल रहते हुए श्री दरबारा सिंह, निर्मल चंद जैन, शैलेंद्र कुमार सिंह और श्रीमति प्रभा राव का निधन हुआ था।
62. शिवराज पाटिल बने राजस्थान के राज्यपाल, **टाइम्स ऑफ इण्डिया,** 28 अप्रेल, 2010.
63. केन्द्र की यूपीए सरकार, मुख्यमंत्री–राज्यपाल विचारधारा एक ही थी, इसलिए तनाव, खींचतान की कोई गुंजाइश नहीं थी।
64. **टाइम्स ऑफ इण्डिया**, 13 मई, 2012.
65. रोहित परिहार, "राजस्थान की राज्यपाल मार्गरेट अल्वा मुख्यमंत्री गहलोत के खिलाफ खुलकर रूख अपनाने से नहीं हिचकिचाती हैं", **इंडिया टुडे,** 26 जुलाई, 2013.
66. वही, उपर्युक्त
67. रोहित परिहार, "मेरी किताब से पता चलेगा कि मैंने एआईसीसी **(अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी)** क्यों छोड़ी? राजस्थान की राज्यपाल मार्गरेट अल्वा" **इंडिया टुडे,** 19 जुलाई, 2013.
68. **एबीपी न्यूज,** 12 मार्च, 2023.
69. **द इंडियन एक्सप्रेस, "**डिड राजस्थान गवर्नर कल्याण सिंह प्रेज फॉर पीएम मोदी वोईलेट रूल्स" 26 मार्च, 2019.
70. **इंडिया टुडे,** 11 अप्रेल, 2023.
71. **इंडिया टुडे,** 15 जुलाई, 2020.
72. **द हिंदू,** 12 जुलाई, 2020.
73. **द हिंदू,** "राजस्थान में राजनीतिक संकट अशोक गहलोत ने विधानसभा सत्र के लिए राज्यपाल कलराज मिश्र को संशोधित नोट भेजा", 26 जुलाई, 2020.
74. **इंडिया टुडे,** 29 जुलाई, 2020.
75. **उपर्युक्त।**
76. **फ्रंटलाइन,** 13 अगस्त, 2020.

77. **इंडिया टुडे,** 28 जुलाई, 2020.
78. **फाइनिशियल एक्सप्रेस,** 22 अगस्त, 2020.
79. **एबीपी न्यूज,** 12 मार्च, 2023.
80. श्री हरिभाऊ किसनराव बागड़े राजस्थान के 45वे राज्यपाल।
81. **द स्टेट्समैन,** 7 जुलाई, 2025.
82. **आज्ञाकारी राज्यपाल** जैसी किसी औपचारिक अवधारणा का संविधान में कोई उल्लेख नहीं है, लेकिन भारतीय राजनीति में यह विचार इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल विशेषकर 1970 के दशक और राजनीतिक विश्लेषकों की आलोचनाओं से उपजा एक व्यंग्यात्मक विचार है। यह विचार दर्शाता है कि अपने राजनीतिक स्वार्थों और विरोधी दलों को गिराने के लिए राज्यपालों की नियुक्तियां की गई हैं। ऐसे राज्यपाल केन्द्र के इशारों पर कुछ भी करने के लिए तैयार रहता है।